स्वस्थ सुखी दिव्य जीवन

डा० हरनारायण सक्सैना

स्वस्थ सुखी दिव्य जीवन

डॉ॰ हरनारायण सक्सेना

https://harnarayan-saxena.com/books%2C-video-and-audio

Digital Edition 2 – 13th Oct 2018

दो शब्द

मनुष्य का शरीर प्रकृति के एक अद्भुत कृति है। यह ऐसा अद्भुत स्वचालित यंत्र है कि यदि इससे अनावश्यक छेड़छाड़ न की जाए, आहार-विहार के नियमों का पालन किया जाए, अपनी प्रकृति के अनुकूल रहा जाए, तो मनुष्य स्वस्थ, सुखी जीवन-यापन करता हुआ, दीर्घ आयु को प्राप्त कर सकता है। यही संदेश श्रद्धेय परम संत डॉ हरनारायण सक्सेना ने अपनी इस पुस्तक के द्वारा दिया है। वह अपनी आयु के लगभग 9 दशक पार कर रहे हैं। अब भी युवकों की भाँति सीधे चलते हैं। सम्यक आहार लेते हैं, पूरी नींद लेते हैं, लेखन पठन करते हैं और घंटों आध्यात्मिक चर्चा व सत्संग में बैठ कर ज्ञान दीप प्रज्वलित करते हैं। उनके शिष्यों, मित्रों व सहयोगियों ने उनसे उनकी स्वस्थ दीर्घ आयु का रहस्य समय-समय पर पूछा है। उसके उत्तर स्वरूप इस पुस्तिका का प्रणयन हुआ है।

डॉ साहिब की मान्यता है कि जिस प्रकार फर्नीचर या कोई भी वस्तु सही रख-रखाव से अधिक दिनों तक टिकी रह सकती है, उसी प्रकार मानव शरीर भी प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए अनुरक्षित किया जाए, तो स्वस्थ रुप में अधिक दिन तक टिक सकता है। आहार विहार युक्त हो, कर्म और चेष्टाएँ विवेक पूर्ण हों, तो कोई कारण नहीं कि मानव दीर्घकाल तक स्वस्थ सुखी जीवन न जी सके। हो सकता है ऋतु व पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन शरीर यंत्र में अवरोध व रोग पैदा करें पर शरीर में ऐसी शक्ति है कि वह विजातीय द्रव्यों का निष्कासन, परिशोधन कर ले, अपने आप को पर्यावरण के अनुकूल बना ले। प्रकृति संसार की सर्वोत्तम चिकित्सक है, अतः रोग होने पर वह न्यूनतम औषधि सेवन की सलाह देते हैं और प्रातः काल जागने पर किए जाने वाले उषा पान से लेकर, रात्रि में सोने तक दिनचर्या किस प्रकार की हो, मनुष्य भोजन व श्रम आदि में क्या सावधानियाँ बरतें, इसकी सरल भाषा में स्पष्ट व्याख्या करते हैं, जिसको पढ़कर सामान्य जन भी अत्यंत सरलता से अपने जीवन को नियमित कर सकता है।

पर मानव एक भौतिक यंत्र मात्र ही नहीं है, वह सचेतन प्राणी है, उसको मन व बुद्धि के प्रयोग की स्वतंत्रता भी मिली है। वह विवेक-पूर्ण कर्म निर्णय कर

सकता है। यौगिक शब्दावली में उसके भौतिक शरीर के अलावा सूक्ष्म और कारण शरीर भी हैं। मानव व्यष्टि मात्र नहीं, बल्कि वह सामाजिक प्राणी भी है, समाज में जीता है, समाज से संवेदन ग्रहण करता और उसे देता है। केवल शरीर ही बीमार नहीं होता बल्कि मन भी बीमार होता है। कुछ बीमारियाँ साइको सोमेटिक भी होती हैं। आधुनिक शरीर विज्ञान और रोग विज्ञान तो यह मानने लगा है कि अधिकांश बीमारियाँ मानसिक होती हैं। वह शरीर में अभिव्यक्त होती हैं। कामुकता, लोलुपता, हिंसा, अभिमान मनुष्य के मन में पैदा होते हैं और व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में अभिव्यक्त होते हैं। आज के युग में बढ़ता हुआ तनाव, अवसाद, अशांति इनका प्रमुख रूप है। यही कारण है किस सुख के अपरिमित साधन होते हुए भी विकसित पश्चिमी देशों के लोग शांति की खोज में भारत आते हैं। डॉ सक्सेना साहिब आध्यात्मिक पुरुष हैं वह परम संत हैं। उन्होंने न केवल शरीर के रख रखाव के बारे में सुझाव दिए हैं अपितु मानसिक व आध्यात्मिक जीवन के पालन पर भी प्रकाश डाला है। यह सही है कि सूक्ष्म के बारे में बात करते समय भाषा संकेत मय होने लगती है पर डॉक्टर साहिब ने जहां तक हो सका है, सरल शब्दों में इस दुरूह विषय को भी स्पष्ट किया है।

आपने बताया है कि जीवन एक सतत यात्रा है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रस्थान है। जो शरीर में अटके रह जाते हैं, वह आगे नहीं बढ़ पाते। ध्यान की प्रक्रिया एक खोज की प्रक्रिया है। मानव जीवन में अंतिम लक्ष्य आत्मबोध की प्राप्ति की प्रक्रिया है। अतः स्थूल, सूक्ष्म और कारण,जब तीनों ही स्तरों पर व्यक्ति सचेतन रहता है, तभी वह स्वस्थ व सुखी जीवन प्राप्त कर सकता है।

आजकल शरीर विज्ञान और स्वास्थ्य व चिकित्सा पर पुस्तकों की बाढ़ आई हुई है। चिकित्सा उद्योग में दुनिया की अपरिमित धनराशि लगी हुई है, रोगों के बारे में नई-नई शोधें हो रही हैं, फिर भी नए-नए असाध्य रोग पैदा होते जा रहे हैं। लगता है, प्रकृति का मानव बुद्धि दोनों में लुका-छिपी चल रही है। ऐसे में ऐसे संत पुरुष की वाणी, जिसने 90 वर्ष तक स्वस्थ व सुखी जीवन जिया है, जिसने जीवन रहस्य को न केवल स्वयं उद्घाटित किया है, बल्कि उसका 'जगद् हिताय' प्रकाशन भी किया है, जन-जन को सरल वह सहज जीवन जीने में सहायता करेगी, मैं ऐसी

आशा करता हूँ। पुस्तिका की विशेषता यह है कि यह अध्यात्म में जिज्ञासुओं के लिए तो उपयोगी है ही, बल्कि सामान्य जन के लिए भी अधिक श्रेष्ठ मार्गदर्शक है। डॉक्टर साहब ने मुख्यतः सामान्य जन के लाभार्थ ही इसे लिखा है। आज के तनाव वे तमस भरे जीवन में यह प्रकाश की किरण सुखी जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। जन-जन इससे लाभान्वित हों, ऐसी मेरी प्रभु से प्रार्थना है। गीता में श्लोक है -

युक्ताहार वितारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु,
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

जयपुर
दिनांक – 3 सितंबर 1997

डॉक्टर त्रिभुवननाथ चतुर्वेदी
पी०एच०डी०

विषय-सूची

प्रस्तावना 14

सृष्टि के तीन विभाजन 18

तीन प्रकार की इच्छाएँ 21

भाग 1 - शारीरिक स्वास्थ्य 23

जीवन के मुख्य स्रोत 23

1. नित्य कर्म 27

(i) प्रातः सोने से जागना 28

(ii) उषा पान 28

(iii) मल विसर्जन 29

(iv) मुंह, दांत आदि की शुद्धि 29

(vi) आँखें 32

(vii) नाक 33

(viii) कान 34

(ix) शरीर का सिर के नीचे का भाग 35

2. स्नान 36

(i) घर्षण स्नान 37

(ii) पोरवा स्नान 39

3. व्यायाम 41

4. भोजन 42

5. कोष्ठबद्धता 46

6. नौलि क्रिया 51

7. रोग और चिकित्सा 53

8. मादक पदार्थ 56

(i) मदिरा (शराब) 56

(ii) तम्बाकू 58

(iii) अन्य 59

भाग 2 - मानसिक स्वास्थ्य 61
1. मन की परिभाषा 61
(i) मन 61
(ii) चित्त 61
(iii) बुद्धि 61
(iv) अहंकार 61
2. मन का कार्य 62
3. अष्टांग योग 63
(i) यम 64
(ii) नियम 64
(iii) आसन 64
(iv) प्राणायाम 64
(v) प्रत्याहार 64
(vi) धारणा 65
(vii) ध्यान 65
(viii) समाधि 65
4. संतों का अवतरण 65
5. संत सद्गुरु 66
6. मन की सीमा 67
7. मन की शक्ति एकाग्रता आदि 68
8. सद्गुरु की खोज 70
9. मानसिक तनाव 71
10. साठ (60) वर्ष के आयु उपरान्त 75
11. लक्ष्य 78

भाग 3 - आध्यात्मिक स्वास्थ्य 81
1. आध्यात्मिक स्वास्थ्य क्या है ? 81
2. गुरु की आवश्यकता तथा पहचान 83
3. सन्त सद्गुरु 85
4. सन्त कबीर के अठारह चक्र 86

5. आत्मा की अंतिम पहुँच 87
(1) सालोकता 88
(2) सामीपता 88
(3) सारूपता 88
(4) सायुज्यता 88

समर्थ सद्गुरु परम्संत

महात्मा श्री रामचन्द्र जी

फतेहगढ़ (उ० प्र०)

जन्म: 2 फरवरी 1873 निर्वाण: 14 अगस्त 1931

परम सन्त महात्मा श्री रघुवर दयाल जी

कानपुर (उ० प्र०)

जन्म 7 अक्टूबर 1875 निर्वाण 7 जून 1947

परम्संत महात्मा कृष्णस्वरूपजी
जयपुर (राजस्थान)

परम सन्त डॉ॰ हरनारायण जी सक्सेना

जयपुर

http://www.harnarayan-saxena.com/home.html

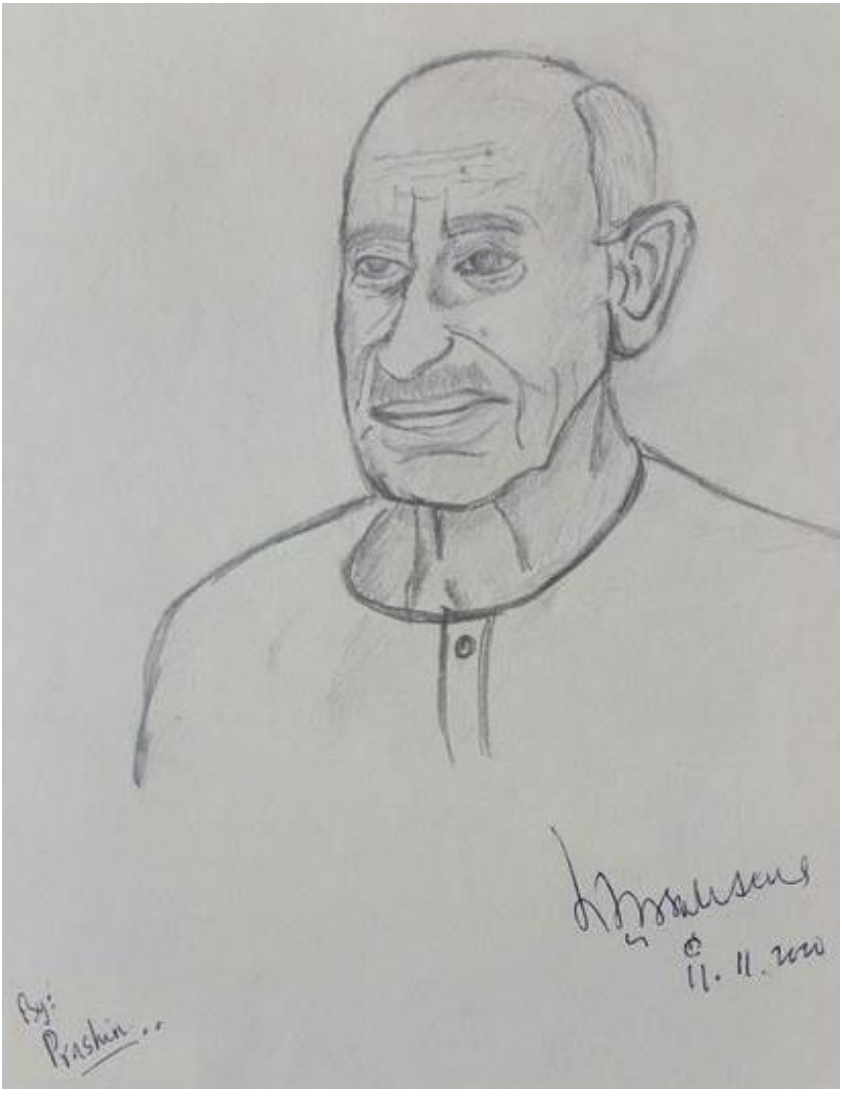
By: Prashin..
11. 11. 2020

स्वस्थ सुखी दिव्य जीवन

प्रस्तावना

मेरे कुछ मित्र मुझसे यह पूछते हैं कि आप इस आयु में भी सीधे (अर्थात बिना झुके) सामान्य रूप से चलते फिरते हैं तथा अपना दैनिक कार्य भी बिना किसी सहायता के करते हैं। लिखने पढ़ने में भी आपका कार्य सामान्य (वरन् थोड़ा अधिक) ही है। मस्तिष्क भी आपका सामान्य कार्य करता है। आध्यात्म में विशेषकर ध्यानादि करने कराने में विशेष रुचि अथवा प्रभाव है। इस सब का क्या रहस्य है ?

प्रश्न निस्संदेह बड़ा उत्तम है। मुझे हर्ष है कि मेरे मित्रों का ध्यान इस ओर आकर्षित तो हुआ। इसका उत्तर देने में न तो मुझे कोई संकोच है - न कोई असुविधा। गत 20 मार्च 1996 को मैंने अपनी आयु के नवासीवें (89th) वर्ष में पदार्पण किया। सौभाग्य से अधिकतर मैं सामान्य ही रहता हूँ - रोगग्रस्त नहीं होता और शरीर के किसी भाग में किसी प्रकार का दर्द अथवा कष्ट (ज्वर आदि) ही नहीं होता। यदि कभी सर्दी के प्रकोप से अथवा अन्य कारणों से थोड़ा अस्वस्थ हो गया तो शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता हूँ। वैसे आयु के कारण सामान्य दुर्बलता होना तो स्वाभाविक ही है। मुझे 5-6 वर्ष से चलने में लकड़ी का सहारा लेना पड़ता है। पैरों में यदाकदा लड़खड़ाहट आ जाती है।

इस प्रश्न के उत्तर में जो मेरा निवेदन (अथवा लेख) है- उस पर मित्र गण यदि ध्यान देंगे और विचार करेंगे तो उनसे सर्वप्रथम तो यह बतलाना चाहूँगा - जिसको संक्षेप में कहा जा सकता है "अति सर्वत्र वर्जयेत"। अर्थात् किसी भी प्रकार की अति से बचे रहिये। न तो अधिक खाइये, न अधिक पीजिये, न अधिक काम कीजिये, न अधिक चलिये, न अधिक बैठे रहिये, न अधिक बात कीजिये, न अधिक परिश्रम का काम कीजिये न अधिक विश्राम कीजिए इत्यादि।

बचपन में हम अपने जीवन पर नियंत्रण स्वयं नहीं कर सकते- क्योंकि

हमारी बुद्धि का विकास उस समय पूरा नहीं हो पाता और सभी बातें (अच्छे-बुरे) को समझ नहीं पाते। अतः हमारा सारा नियंत्रण माता-पिता आदि अभिभावकों द्वारा ही होता है और होना भी चाहिये। परन्तु देखने में यह आता है कि बच्चों को भी अधिक खाने को स्थान-स्थान पर समय-समय पर प्रोत्साहित किया जाता है जो सर्वथा अनुचित है। अतः अपनी परम्पराएं – प्राथमिकताएं जो हानिकारक हैं - बदल डालनी चाहिये। हमें चाहिये कि भोजन में स्वयं अपना संतुलन रखें और अपने बच्चों को बचपन से ही यह सन्तुलन सिखायें।

जीवन के प्रत्येक समय में - किसी भी आयु में, किसी भी परिस्थिति में भोजन का सन्तुलन बनाये रखना चाहिये - यह अत्यावश्यक है। पशु पक्षी प्रकृति के अनुसार रहते हैं अतः पेट भर जाने पर अपने भोजन की ओर देखते भी नहीं। परन्तु मानव को भगवान ने प्रकृति का शासक बनाया है अतः वह इस स्वतंत्रता का उपयोग (सही कहें तो दुरुपयोग) अपने भोजन पर भी करता है और जिह्वा के स्वाद में सामान्य तथा आवश्यक से अधिक खा लेता है और आगे चलकर दुख पाता है। इस ओर हमें विशेष सतर्कता बरतनी चाहिये।

जहां तक हो सके निश्चित समय पर ही भोजन करना चाहिये - और उस समय संतुलित मात्रा में (अथवा सामान्य क्षुधा पूर्ति से कुछ थोड़ा) ही आहार लेना चाहिये। भोजन के साथ जल पीने से - पाचन क्रिया के लिये पाचन ग्रंथियों से जो रस निकलता है वह जल मिल जाने से निर्बल हो जाता है और पाचन को बिगाड़ देता है। अतः भोजन के साथ जल नहीं (अथवा बहुत कम) पीना चाहिये। ध्यान रहे कि आवश्यकता से थोड़ा कम भोजन करने से कोई हानि नहीं हैं - वरन लाभ और आराम है - और अधिक खा लेने से हानि ही हानि है। इसी प्रकार सोने-जागने, शौच-स्नान, सामाजिक अथवा व्यावसायिक कार्यों तथा पूजा ध्यान आदि में भी समय - अवधि निश्चित होना चाहिये। कारणवश कभी थोड़ा न्यून-अधिक हो जावे तो भविष्य में सावधानी बरतनी चाहिये।

दूसरी मानव की बड़ी दुर्बलता जो इतनी ही (सम्भवतः इससे भी अधिक हानिकारक है वह है "मानव की विषय वासना"। पशु पक्षी तथा अन्य प्राणियों की

काम वासना ऋतु विशेष में ही जागृत होती है और यही उनकी सन्तानोत्पत्ति का कारण बनती है, परन्तु मानव इसमें भी स्वतंत्र है। उसके लिये न तो कोई विशेष समय न स्थान और न ही परिस्थिति - कुछ भी बाधक नहीं होते। इस स्वच्छंदता से कितनी हानि होती है - वह सदा ही इसकी अनदेखी करता है। स्वयं दुख पाता है अन्यों के लिये भी दुख का कारण बनता है। अतः इस विषय में विशेष सतर्कता तथा सावधानी बरतनी चाहिये।

यदि कहीं अधिक चलने का काम पड़े तो यथाशक्ति बीच-बीच में थोड़ा विश्राम करना चाहिये। पढ़ना लिखना हो तो उसमें भी थोड़ा कार्य करने के पश्चात बीच-बीच में थोड़ा (बहुत थोड़ा) विश्राम लेते रहना चाहिये। इससे योग्यता, सामर्थ्य अथवा कार्य क्षमता तथा कुशलता बढ़ती है।

सारांश इस सबका यही है कि अधिकता (अति) से सर्वथा - सर्वदा बचते रहना चाहिये। यदि आप इन बातों का ध्यान रखेंगे तो सामान्यतः आपके जीवन में नियंत्रण तथा सन्तुलन आ जावेगा और आपको स्वस्थ्य, सुखी, दीर्घायु जीवन प्राप्त होगा।

इस सबके उपरान्त हमें अपने जीवन के सबसे आवश्यक कर्तव्य को - जिसके लिये हमें मानव जन्म मिला है - नहीं भूलना चाहिये। सन्तों के मतानुसार हमें इसी मानव जन्म में - भगवान का साक्षात्कार करके - जन्म मरण के बन्धन से सदा के लिये मुक्ति पा लेना चाहिये। याद रखिये कि सबसे अधिक कष्ट प्राणि मात्र को, जन्म तथा मृत्यु के समय होता है जिसे वह भूल जाता है। सद्गुरु की शरण में जाने से और उनके बताई तथा चलाई राह पर चलने से यह संभव है कि "सुखों" से भी उत्तम, जिसे सन्तों की भाषा में 'परमानंद' कहते है, इसी मानव जीवन में सद्गुरु द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रयत्न करके इसे प्राप्त करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और मानव के जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।

सन्तों की परम्परा का अनुसरण करके मानव इसी जन्म में परमात्मा में लयता या फ़नाइयत प्राप्त करके अपने जीवन के उच्चतम आदर्श को प्राप्त कर सकता है। जीवात्मा की यही ऊँची से ऊँची पहुँच व आदर्श है। इन अर्थों में मानव

जीवन की यही दिव्यता है।

गुरु भगवान सबका कल्याण करें।

स्वस्थ सुखी दिव्य जीवन

सृष्टि के तीन विभाजन

स्वस्थ रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हमारे समाज की परम्पराएँ समय के प्रभाव से कुछ ऐसी बदली हैं कि हमें अपने इस अधिकार से वंचित होना पड़ा है। चिर सुख प्राप्ति के मार्ग पर न चलकर हम उस मार्ग पर चल पड़े जहाँ सुख दिखता तो अवश्य है परन्तु वह क्षणिक है, अन्ततः वह दुख का ही मार्ग है। यह अधोपतन एक पीढ़ी एक शताब्दी आदि तक सीमित नहीं, परन्तु लम्बे समय से चलते आ रहे हमारे स्वभावों में परिवर्तन का फल है।

यदि हम प्रकृति के अनुकूल रहें तो अस्वस्थ होने का कोई कारण ही नहीं है। परन्तु हमारा जीवन तथा जीवन के सारे ही कार्य जाने-अनजाने दिन-प्रतिदिन प्राकृतिक से अप्राकृतिक आधारों में शीघ्रता से बदलते जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप हम प्रकृति के अनुकूल न रहकर, प्रतिकूल ढंगों को अपने जीवन में उतारते चले जा रहे हैं।

नये-नये आविष्कारों ने हमारा जीवन स्वाभाविक से अस्वाभाविक बनाकर रख दिया है। हम इसे आधुनिक कह कर अपनाते और हर्षित होते जा रहे है त था अपने आपको आधुनिक कहते और उस पर गर्व करते हैं।

प्रगति, उन्नति (Advancement) तथा परिवर्तन (Change) हमें बैल गाड़ी के युग से वायुयान के युग में, संदेशवाहक कबूतरों के युग से दूर संचार (Tele-Communication) की ओर, वायु-कूलित घड़े के जल से फ्रीज की ओर, प्राकृतिक वातानुकूलित सुरंगों से विद्युत शक्ति द्वारा वातानुकूलित भवनों की ओर इत्यादि, पुरानेपन से आधुनिकता की ओर शीघ्रता से लिये चले जा रहे हैं।

इतनी बड़ी पृथ्वी पर बसा यह संसार अब इतना छोटा हो गया है कि हम अल्प समय में (कुछ घण्टों) में ही इसका भ्रमण कर लेते हैं। तीर्थ गया जी जाने वालों को कहा जाता था कि गया सो गया अब लौट कर आने की आशा नहीं। अब

गया जाकर कुछ घण्टों मैं ही लौट आने के साधन उपलब्ध हैं। बैलों द्वारा खेती होती थी अब ट्रैक्टरों द्वारा होती है इत्यादि-इत्यादि।

इन सब परिवर्तनों का हमारे रहन-सहन पर प्रभाव पड़ा है। इन्होंने हमारे सारे जीवन को ही कृत्रिम तथा अप्राकृतिक बनाकर रख दिया है।

पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली हम पर ऐसी छा गई है कि तुरन्त आराम पाने की इच्छा ने हमारा जीवन ही अप्राकृतिक बना दिया है। परन्तु हम इसे ही अधिकाधिक अपनाते चले जा रहे हैं।

आधुनिक युवा पीढ़ी पश्चिम देशों से आए हुए सारे साधनों को अपनाने और उनकी पूर्णतः नकल करने में हम अपना गौरव समझते हैं। यह प्रवृत्ति भयावह है। आधुनिकता से हमारा कोई विरोध हो ऐसा नहीं हैं। परन्तु हमें इन आधुनिक साधनों का उपभोग करते समय यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि आवश्यकतानुसार ही इन्हें अपनायें। इन पर निर्भर होकर अपने जीवन को कृत्रिम (Artificial) न बनावें। यदि ऐसा करेंगे तो हम प्रकृति माता के अनुकूल रहकर, उसके द्वारा उपलब्ध साधनों की सहायता से अपने जीवन, व स्वास्थ्य के ह्रास-अधोपतन को रोक कर, स्वस्थ सुखी जीवन जीने के योग्य हो सकते हैं।

इस पुस्तिका में हम आपके सन्मुख कुछ सुझाव रख रहें हैं जिसे अपना कर उपलब्ध साधनों द्वारा ही आप अपने जीवन को स्वस्थ तथा सुखी बना सकते है तथा मानव जीवन के सर्वोपरि उद्देश्य अर्थात् भगवान को पा सकते हैं।

भगवान की सृष्टि हमारे शास्त्रों के अनुसार तीन बड़े भागों में बँटी हुई है -

i) पहला स्थूल - जिसमें पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र ग्रह आदि की रचना, ऐसे अनेकों ब्रह्माण्डों की रचना; जिनका बहुत भाग ऐसा है जो हमें यन्त्रों द्वारा भी दिखलाई नहीं पड़ता है। इसके विस्तार का अनुमान हम ठीक से लगा भी नहीं पाते हैं।

ii) दूसरा सूक्ष्म - हमारे शास्त्रों के अनुसार सूक्ष्म की रचना स्थूल से कई गुना बड़ी है।

iii) तीसरा कारण - इसकी रचना शास्त्रों में सूक्ष्म से भी कई गुना बड़ी बतलाई गई है।

हम इन तीनों भागों का सविस्तार वर्णन अपने पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयास कर रहे हैं।

हम स्थूल में रहते हैं। स्थूल के विषय में बहुत कुछ जानते भी हैं। इसमें अनुसंधान सबसे सरल होने के कारण बहुत कुछ हुआ है। भूगोल-खगोल की बहुत-सी जानकारी मानव ने अपने ही प्रयत्नों द्वारा प्राप्त की है। दूर और अति दूर नक्षत्र आदि से मानव रहित यान भेज कर उनके चित्र मंगवाये और प्रकाशित किये हैं। फिर भी यह सब जानकारी सीमित ही है। बड़ी-बड़ी दूरबीनों द्वारा जो सृष्टि की रचना की जानकारी मिली हैं उसके अनुसार हमारे सूर्य परिवार समूह के समान अनेकों ब्रह्माण्ड इस आकाश में विद्यमान हैं। भारत की धार्मिक पुस्तकों (योग वशिष्ठ आदि) में इसका कुछ वर्णन लोकों के नाम से मिलता है।

सूक्ष्म मण्डलों के विषय में भी भारत के धार्मिक साहित्य में बहुत कुछ मिलता है। इसी प्रकार कारण के विषय में भी कुछ तो मिलता है परन्तु अधिक नहीं।

संतों के साहित्य में अवश्य हमारे सूक्ष्म तथा कारण के मंडलों का विवरण मिलता है। क्योंकि यह जानकारी उनको (संतों को) निजी अनुभवों के अनुसार ही होती है अतः पूर्णरूप से विश्वसनीय कही जा सकती है। परन्तु इन सब की भी पूर्ण जानकारी हम सबके हेतु देने में सन्त भी किन्हीं कारणों से समर्थ नहीं हो सके और यह कह कर चुप हो गये कि जो यहाँ पहुँचेगा वह स्वयं ही जान लेगा। ऐसी स्थितियों का वर्णन हमारी आजकल की भाषा में संभव नहीं है अतः ये सब गुप्त ही हैं। हमारे जीवन का बड़ा भाग स्थूल जीवन से सम्बन्धित है। सूक्ष्म का थोड़ा भाग भी इससे जुड़ा हुआ है। हम पहले इसी का वर्णन इस पुस्तिका में कर रहे हैं। सूक्ष्म-मानसिक

तथा कारण-अध्यात्मिक की भी बाद में चर्चा करेंगे।

तीन प्रकार की इच्छाएँ

इसी प्रकार मानव की इच्छाओं को निम्न तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं :-

1. यह सदा जीवित रहना चाहता है- सत्

2. वह सब कुछ जानना चाहता हे- चित

3. वह सुख शान्ति भी चाहता है- आनन्द

यह तीनों इच्छाएँ उसमें भगवान नारायण सच्चिदानंद द्वारा ही दी गई हैं।

i) सबसे पहली इच्छा तथा आवश्यकता सदा जीवित रहने (अथवा चिर जीवन प्राप्त करने) की है। जो हमारे स्थूल जीवन से संबंधित है। हम पहले इसी विषय को लेते हैं।

यह तो हम सभी जानते हैं और रात दिन देखते हैं कि जो इस संसार में आया है वह जाता अवश्य है। जो जन्म पाता है वह मृत्यु को भी प्राप्त होता है। परन्तु फिर भी हमारी अपनी सदा जीवित रहने की इच्छा बलवती बनी रहती है। यदि हम अपने जीवन को स्वस्थ तथा निरोग बना सकें तो हमें दीर्घ जीवन तथा सुख जीवन पर्यन्त मिलता रह सकता है। हमें इसी से सन्तोष होना चाहिए। यह सब कैसे हो ? यही हमारा विषय है।

ii) दूसरी इच्छा: 'चित' अर्थात् जान लेने की है। हम सभी बातें जान लेना चाहते हैं। चाहे हमारे काम की हों या न हों।

iii) तीसरी इच्छा सदा सुखी रहने की है। साधारण सुख में तो दुःख जुड़ा ही रहता है, परन्तु जो अति-उत्तम प्रकार का सुख है जिसे हमारी यौगिक भाषा में

'आनन्द' कहते हैं उसे पाने की इच्छा सब की होती है।

भाग 1 - शारीरिक स्वास्थ्य

हमारा स्थूल जीवन

जीवन के मुख्य स्रोत

यदि हम इस पर विस्तार से विचार करें तो हम पायेंगे कि हमारा जीवन इन दो स्वाभाविक क्रियाओं द्वारा संचालित होता है।

1. श्वास-प्रश्वास

2. हृदय की गति

हमारी मान्यताओं के अनुसार इन दोनों ही कार्यों का हमारे जीवन से सीधा सम्बन्ध है। स्थूल जीवन के साथ सूक्ष्म का भी बहुत कुछ संचालन इन्हीं दोनों क्रियाओं द्वारा होता है। जीवित रहने के लिए हमें भोजन पर निर्भरता पूर्ण रूप से नहीं रहती। भोजन के बिना कुछ समय तो जिया भी जा सकता है परन्तु श्वास-प्रश्वास बिना जीवन संभव नहीं है। इसी प्रकार हृदय के संचालन बिना भी जीवन संभव नहीं है।

आपने भी समाचारों में पढ़ा होगा कि कुछ वर्ष हुए राजस्थान के जयपुर नगर में किसी ग्राम से एक महिला आई थीं जो कुछ भी भोजन नहीं करती थीं, न जल पीती थीं। परन्तु चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने, बात करने आदि में उनका जीवन सामान्य था। हमारे वैज्ञानिकों का यह कहना है कि वे अपनी शारीरिक पोषण की आवश्यकताएँ श्वास द्वारा वायुमण्डल से ग्रहण कर लेती थीं। ये महिला तो अब इस संसार में नहीं है परन्तु जिन्होनें इन्हें देखा और जाना है वे महानुभाव जयपुर में अब भी विद्यमान हैं।

साधारणतया हम भी जानते हैं कि बिना भोजन कुछ समय तक तो जीवन चल ही सकता है। परन्तु श्वास के लिए वायु हर समय अवश्य चाहिए।

हमारे शास्त्रों के अनुसार एक मान्यता यह भी है कि प्रत्येक प्राणी के जीवन के लिए निश्चित मात्रा में श्वासें भी मिली होती हैं जिनके पूरा हो जाने पर उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। यह श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया सामान्यतः प्राणायाम द्वारा नियन्त्रित की जा सकती है। हमारा इतिहास कहता है कि हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि दीर्घजीवी होते थे। उनका यह साधन प्राणायाम द्वारा होता था।

आपने भी सुना या पढ़ा होगा कि हमारे प्राणायामी साधु एक महीना, दो महीना, छः महीना की समाधि लगा लेते थे। समाधि में श्वास-प्रश्वास का ऐसा नियन्त्रण होता था कि श्वास-प्रश्वास प्रायः नहीं के बराबर चलता था। श्वास प्रश्वास द्वारा जीवन शक्ति व्यय न होकर संचित हो जाने से आयु की वृद्धि इस प्रकार स्वतः ही हो जाती थी।

सन्तों के मत में, अभ्यासियों को भगवान नारायण अथवा सद्गुरु भगवान से सीधा सम्पर्क रखना नितान्त आवश्यक है। कुछ सन्त अपने श्वास-प्रश्वास के द्वारा सद्गुरु से सम्बन्ध को इस प्रकार जोड़ते हैं कि जो श्वास वे ले रहें हैं वह सद्गुरु भगवान से आ रही है और जो छोड़ रहे हैं वह वहीं सद्गुरु को पहुँच रही है। इस प्रकार यह सम्बन्ध हर समय जानते तथा न जानते हुए बना रहता है। सन्तों के अभ्यास में सर्वदा सद्गुरु की याद बनी रहना अनिवार्य (आवश्यक) है। इसी अभ्यास के द्वारा वे सद्गुरु भगवान को सदा अपने साथ रखते हैं। इसी अवस्था की प्राप्ति के लिए अभ्यासियों तथा योगियों के सारे प्रयत्न होते हैं।

श्वास-प्रश्वास के विषय में आपने पढ़ा कि इनका हमारे जीवन से कितना निकट का सम्बन्ध है। इसी प्रकार हृदय की गति का भी जीवन से घनिष्ठ तथा निकटतम सम्बन्ध है। सामान्य अवस्था में हृदय की यह धड़कन स्वस्थ मानव में एक मिनट में 72 होती है। डाक्टर लोग इसे यन्त्र द्वारा सुनते और देखते हैं। परन्तु वैद्य और हकीम केवल नाड़ी देखकर ही इसके द्वारा शरीर के भीतर के रोगों का विवरण जान लेते है जिससे निदान में बड़ी सहायता मिलती है। लगता है पाश्चात्य देशों में नाड़ी परख की विद्या अभी तक विकसित नहीं हो पाई है।

यह धड़कन, जिसे सन्तों की भाषा में 'शब्द' कहते हैं, जीवन पर्यन्त

प्राणिमात्र के शरीर में होती रहती है। और समाप्त तब होती है जब शरीर मृत होता है। संतों के अनुसार यह शब्द भगवान नारायण के नाम का जाप है जो शरीर के प्रत्येक भाग में हो रहा है। यदि आप अपने हाथ या पैर की अंगुली अथवा शरीर के किसी भाग को थोड़ा दबायें रखें तो आपको यह धड़कन अथवा शब्द "ओम्" निकलता हुआ स्पष्ट अनुभव होगा। इसी के द्वारा सन्तों का शब्द जाप होता है जो चौबीसों घण्टे बिना रुके होता रहता है। शरीर में सहस्रों स्थान ऐसे हैं जहाँ यह शब्द जाप होता है और जहां इसका अनुभव होता है। अनुमान लगाइये कि यदि एक हजार संख्या भी इन स्थानों की हो तो एक धड़कन के साथ एक हजार "ओम्" शब्द का उच्चारण हुआ और एक मिनट में लगभग 72000 होगा। आप माला लेकर जाप करें तो एक माला 108 बार में एक मिनट तो लगेगा और केवल 108 बार जप सकेंगे जबकि ह्रदय का जाप 72000 होगा और जब यह जाप चौबीसों घण्टे अनिवार्य रूप से होता है तो इस जाप की क्या संख्या और इसका क्या प्रतिफल होगा, यह अनुमान लगाना कठिन ही नहीं हमें तो असम्भव लगता है।

इसी जाप के द्वारा सन्त अपने साधन को सरलतम बनाकर शीघ्रता से स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण के बड़े-बड़े मण्डलों को पार करके - आनन्दमय, सच्चिदानंद भगवान के निकटतम पहुँचते और वहां अपनी सदा सर्वदा की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं।

नाड़ी विशेषज्ञों का कहना हैं कि शरीर में पैदा हुए विकास की झलक नाड़ी में स्पष्ट दिखाई पड़ती है- जिसकी पुष्टि रोगी अपने कष्टों का विवरण बताकर करता है। बतलाने में वह कुछ बतलाना भूल भी सकता है अथवा उसे स्पष्ट भाषा में बतलाने की पर्याप्त शब्दावली का अभाव भी हो सकता और होता है। परन्तु नाड़ी के पारखी को यह सब बतलाना केवल पुष्टि मात्र ही होता है। वह तो रोगों को पहचान ही लेता है तथा अपनी विद्या व अनुभव के अनुसार औषधि आदि देता है जो स्वास्थ्य प्रदान करने तथा नाड़ी को सामान्य बनाने में सहायक होता है। स्वस्थ मानव की नाड़ी साधारणतः स्वस्थ ही होनी चाहिए जिसमें किसी भी रोग की छाया अथवा झलक न हो।

इस प्रकार हृदय की गति, जिसकी परख नाड़ी द्वारा हो जाती है, स्वास्थ्य को सामान्य रखने में पूरी भूमिका निभाती है। आपने ऊपर यह भी पढ़ लिया होगा कि सन्त इस हृदय की गति को भगवन्नाम से जोड़ कर आध्यात्म के ऊंचे शिखरों तक मानव की आत्मा को पहुँचाते हैं। अतः शारीरिक (स्थूल) अथवा आध्यात्मिक (सूक्ष्म) दोनों ही जीवन की शाखाओं में हृदय और उसकी गति का महत्व है।

प्राणि मात्र का हृदय ऐसा केन्द्र है जहाँ शरीर के हर भाग से, प्रत्येक कोने से रक्त खिंच कर हृदय में आता है वहाँ उसकी सफाई शोधन होता है और शुद्ध किया हुआ रक्त फिर शरीर के दूर-दूर के भागों, अवयवों और कोने-कोने में पहुँचा दिया जाता है। शरीर के सभी स्थानों से रक्त को खींच लेना तथा शोधन पश्चात् उसे पुनः उन स्थानों पर पहुँचा देना, यह एक बड़ी ही अद्भुत शक्ति प्रभु ने हृदय को प्रदान की है। इसके द्वारा हृदय का सम्बन्ध शरीर के प्रत्येक भाग से सीधा जुड़ा रहता है। इसी की परख नाड़ी विशेषज्ञ वैद्य कर लेते हैं। शरीर के लिए आपने हृदय की गति शक्ति आदि का विवरण पढ़ा और यह भी पढ़ा कि हृदय की गति को शब्द की संज्ञा देकर सन्त हमारा आध्यात्म मार्ग प्रशस्त करते हैं।

जीवन के अन्य कार्यों का भी हमारे जीवन पर प्रभाव सदा पड़ता रहता है। जैसे हमारे नित्य कर्म, मल विसर्जन, स्नान, भोजन, व्यायाम, कार्यप्रणाली, व्यवसाय, आदि। इनमें हम पहले भोजन, उदरपूर्ति, विसर्जन आदि को ही लेते हैं। हम चौबीस घण्टे अपना दैनिक कार्य करने में अपनी शारीरिक शक्ति का प्रयोग करते हैं। अतः उस शक्ति का थोड़ा बहुत व्यय तो होता ही है। शारीरिक परिश्रम करने वालों की शारीरिक शक्ति का व्यय अधिक होता है तथा मानसिक परिश्रम करने वाले का कम। मानसिक कार्य करने वालों का मानसिक शक्ति का अधिक व्यय होता है शारीरिक का कम। इस व्यय की हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए हमें भोजन की तथा विश्राम की आवश्यकता होती है। भोजन प्राथमिकता के आधार पर शारीरिक तथा मानसिक शक्ति प्राप्त करने का साधन है।

शारीरिक परिश्रम करने वालों को अधिक भोजन आवश्यक होता है। तथा मानसिक परिश्रम करने वालों को कम भोजन ही पर्याप्त होना चाहिए। सामान्यतः

मानसिक के साथ-साथ थोड़ा शारीरिक परिश्रम तो होता ही है। हमारा भोजन इन कार्यों में व्यय की हुई शक्ति को हमें पुनः प्राप्त करा देता है। अतः अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार इस भोजन का संतुलित होना आवश्यक है। सन्तुलन साधारणतः निर्धारण करना जितना आवश्यक है उतना ही कठिन भी है, क्योंकि हमारे स्वभाव जन्म से ही ऐसे पड़े रहते हैं कि हमारा भोजन तो स्वादिष्ट होना ही चाहिए तथा हम जितना चाहें उतना ही होना भी चाहिए। स्वाद के कारण आवश्यकता से अधिक भोजन सामान्यतः कर लेते हैं। हमारी परम्पराएँ भी ऐसी हैं जो अधिक भोजन करने की ओर हमें प्रेरित करती हैं। इनमें से मनुहार भी एक प्रथा है। माताएँ अपने बच्चों को थोड़ा अधिक खाने को सदा ही प्रोत्साहित करती हैं। मेहमान को मनुहार करके अधिक खिला दिया जाता है। इस प्रकार हम आवश्यकता से अधिक अथवा अपने पेट को उचित मात्रा में भरने के स्थान पर थोड़ा या बहुत अधिक भर लेते हैं। पेट पड़ी गुण करेगी, ऐसा हमारी बूढ़ी मातायें सदा ही कहती रहती हैं। इन सभी कारणों से हमारा स्वभाव आवश्यकता से अधिक खा लेने का पड़ जाता है। अधिक किया हुआ भोजन गुण करने के स्थान पर निश्चित रूप से अवगुण करता है। अतः उसमें सावधानी बरतना नितान्त आवश्यक है। हम आगे इस विषय में तथा स्वास्थ्य संबन्धी विश्लेषण पर अपने सुझाव आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं। यदि इन पर आपने कार्य किया तो आपको लाभ होना भी निश्चित है।

हम आप भी अपनी जीवन प्रणाली को इस प्रकार बदलें कि जिससे हमारे स्वास्थ्य का ह्रास रुके तथा उन्नति की ओर अग्रसर हों। विषय लम्बा है, जटिल भी है। हमारे सुझाव आपको पूर्णतः स्वस्थ तथा प्रसन्न रखने में सहायक होंगे ऐसा हमें विश्वास है।

इस शारीरिक सुख के अतिरिक्त हम आपके लिये मानसिक तथा आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति के लिये भी आगे कुछ सुझाव प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. नित्य कर्म

हमारे जीवन (स्थूल) के क्रम में हम पहले अपनी दिनचर्या को लेते हैं। हम

जो प्रातः सो कर उठने से लेकर रात्रि को सोने के लिये अपने बिस्तर पर जाते हैं यही दैनिक जीवन का कार्यक्रम रहता है। सामान्यतः नित्य प्रति इसी को दोहराते रहते हैं। हम पहले जीवन के इसी पहलू पर विस्तार से विचार करते हैं।

(i) प्रातः सोने से जागना - सूर्योदय से कम से कम एक घण्टा पहले जागना और बिस्तर छोड़ देना चाहिए। सूर्योदय के पश्चात सोना अपने घर दरिद्र देवता को आमंत्रित करना तथा स्वास्थ्य को खराब करना है।

जागते ही प्रथम कार्य भगवान को स्मरण करना होना चाहिए। प्रभु का धन्यवाद करना तथा आगामी दिन भर के लिए सद्बुद्धि के साथ दैनिक कार्यों के संपादन की योजना बनानी चाहिए तथा उसके लिये भगवान से आवश्यक शक्ति, सामर्थ्य तथा स्फूर्ति देने की प्रार्थना करनी चाहिए।

कुछ परिवारों में जो अपने आपको सभ्यता का प्रतीक मानते हैं - माताएँ कहती हैं कि बच्चों को जगायें नहीं, सोने से निद्रा पूरी होने पर स्वतः ही उठ जायेंगे। इस प्रकार प्रातः सोते रहने की बच्चों की आदत को प्रोत्साहन मिलता है। उन्हें यह पता नहीं है कि सूर्योदय के समय तथा बाद तक सोते रहने से मस्तिष्क तथा स्वास्थ्य दोनों ही खराब होते हैं, बुद्धि तथा स्मरण शक्ति मन्द हो जाती है।

जिन्हें प्रातः उठने की आदत है उनसे पूछिये तो वे आपके बतलायेंगे कि उनका चित्त दिन भर कैसा प्रसन्न रहता है और वे समय अधिक मिलने के कारण अपने प्रातः काल के कार्यों को कितनी सुविधा से निपटा लेते हैं। अतः दैनिक कार्यों के लिए भी उन्हें अधिक समय मिल जाता है।

(ii) उषा पान - अपना मुंह जल से कुल्ला करके तथा अंगुलियों से मुंह को अन्दर से साफ कर लेना चाहिए फिर शुद्ध जल पीना चाहिए जिसकी मात्रा लगभग एक लीटर हो इसे उषा पान कहते हैं और यह शास्त्रीय विधान हैं। इसके अनेक लाभ हैं यथा-

1. पेट में दबाव बनता है और मल को आंतों में उतरने में सहायता मिलती

है। शौच साफ हो जाता है। इससे दिन भर चित्त प्रसन्न रहता है।

2. दिन भर प्यास नहीं सताती - मस्तिष्क तथा शरीर में तरी रहती है।

3. कोष्ठबद्धता नहीं होती। यदि पहले से हो तो कुछ सप्ताह उषा पान करने से ठीक हो जाती हैं। इस विषय में जापान में कुछ वर्षों पहले अनुसंधान हुआ और भारत के स्वास्थ्य विभाग ने उनकी विज्ञप्ति को संक्षेप में एक परचे के रूप में वितरित किया तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराया। उनका कहना तो यह है कि केवल जल के प्रयोग से ही पेट के, मस्तिष्क के, जोड़ों के, त्वचा के अनेकानेक रोगों से निवृत्ति हो जाती है।

(iii) मल विसर्जन - इसके पश्चात मल विसर्जन के लिए जाना चाहिए। परन्तु मल विसर्जन में 2-3 मिनट से अधिक समय नहीं लगाना चाहिये। यदि मल त्याग की जलपान के पश्चात भी इच्छा न हो तो दबाव बनाने के लिये थोड़ा टहलना चाहिए जिससे मल को नीचे की ओर सरकने में सहायता मिले। फिर भी जब इच्छा न हो तब संडास पर न बैठें, टहलते ही रहे। ऐसा करने से आपको मलत्याग में बहुत कम समय लगेगा। फिर जल से मलमूत्र स्थानों को अच्छी तरह धो कर साफ करना चाहिए। यदि आपको मल विसर्जन के लिए देर तक बैठने का स्वभाव (आदत) हो तो इस प्रयोग से वह भी ठीक हो जाएगी।

(iv) मुंह, दांत आदि की शुद्धि - इसके पश्चात् मुंह और दांतों की सफाई होनी चाहिए। किसी प्रकार के मंजन, पेस्ट आदि से सफाई कर सकते हैं। वैसे आयुर्वेद में साधारण नमक तथा सरसों के तेल से ही दांतों को साफ करना अधिक लाभदायक बतलाया है। अतः मंजन पेस्ट आदि में भी नमक की मात्रा होनी चाहिए। कड़ुवा तेल (सरसों) व नमक दांतों पर लगाने से मसूड़े व दांत शक्तिशाली होते हैं।

परन्तु इन सबसे दांतों की सफाई इतनी अच्छी नहीं होती जितनी ब्रश तथा पेस्ट से होती हैं। पहले हमारे यहां नीम की, बबूल की, पीलू की दातुन करने की बहुत अच्छी प्रथा थी। अब भी कुछ स्थानों पर दातुन मिल जाती है परन्तु अधिकतर अब ब्रश ने इसका स्थान ले लिया है।

दातुन हो अथवा ब्रश हो, दांतों को साफ करने के लिए पेस्ट की सहायता से दांतों को ऊपर नीचे हल्के दबाव से रगड़ना चाहिए। दबाव से मसूड़े कट भी जाते हैं इसलिए बहुत सावधानी बरतना चाहिए। मसूड़ों की कटाव वाली हानि न हो या कम हो इसका ध्यान रखना चाहिए। बच्चों को इसकी पहले से ही ट्रेनिंग दिया जाना आवश्यक है। फिर जल से कुल्ला करके सफाई करें।

इसके साथ ही गले को भी साफ करना चाहिए। अंगुलियों द्वारा हलक तक ऊपर नीचे, चारों ओर से सफाई करनी चाहिए। इससे गला भीतर तक साफ होता हैं। यदि उबकाई आये तो इससे घबराना नहीं चाहिए। प्रातः पिया हुआ जल थोड़ा निकल भी जावे तो कोई हानि नहीं। हलक की सफाई अच्छी हो जाती है। यदि गले में किसी प्रकार का दर्द हो, या टान्सील आदि हो तो गुनगुने जल में थोड़ा (बहुत थोड़ा) नमक डाल कर उससे गरारा कर लें और कई बार करें। इससे कष्ट दूर होता है।

इस प्रकार मुंह अन्दर से साफ करना चाहिए। ऊपर भी जल से और आवश्यकता हो तो साबुन से साफ करना चाहिए।

(v) सिर - मानव शरीर में सिर का स्थान सबसे ऊंचा है। मस्तिष्क जिसमें बुद्धि रहकर सारा नियन्त्रण तथा संचालन का कार्य करती है, इसी ऊपर के भाग में स्थित है। सिर में ही शरीर की अत्यावशक इन्द्रियों आँख, कान, नाक मुंह, जिह्वा का भी स्थान है।

संतों के अनुसार अठारह में से तेरह आध्यात्मिक चक्र भी इसी में स्थित हैं जिनका सविस्तार वर्णन आपको इस पुस्तक के आध्यात्मिक विभाग में मिलेगा। मानव मात्र को नारायण की इस देन (मस्तिष्क तथा बुद्धि) का यह लाभ हुआ कि उसे भगवान की सृष्टि में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। वास्तव में इसी के बल पर मानव ने सृष्टि के सारे प्राणियों तथा प्राकृतिक शक्तियों को अपने अधीन किया और उन पर शासक का पद तथा गौरव प्राप्त किया।

इस अति विशिष्ट अनुपम कृति को सुरक्षित रखने के लिये सुदृढ़ हड्डियों

का ढ़ाँचा (सिर) बनाकर उसमें इसे स्थित किया तथा वे शक्तियाँ जिन्हें इसी प्रकार की सुरक्षा की आवश्यकता थी, आँख, कान, नाक, जिह्वा इत्यादि इन सबको भी इसी में स्थित किया।

सिर के बाल, शृंगार का एक साधन है - विशेषकर स्त्रियों के लिए बड़े तथा घने बाल होना सुन्दरता का एक आवश्यक अंग अथवा प्रतीक माना जाता है। पुरुषों के लिए भी इसका महत्व कम नहीं है। आधुनिक शिक्षित वर्ग, विद्यार्थी इत्यादि बड़े-बड़े बाल सिर पर रखते हैं, उनकी संभाल, रख रखाव का विशेष ध्यान रखते हैं। आज कल साधन भी इन कार्यों के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। तेल, शैम्पो, हेयर क्रीम आदि के विज्ञापन दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र पत्रिकाओं में नित्य प्रति देखने को मिलते हैं। परन्तु ये सभी साधन कृत्रिम है, प्राकृतिक नहीं।

सामान्यतः स्वस्थ मानव के बाल भी घने काले और चमकीले होने चाहिए। बालों का गिरना या सफेद होना, दुर्बलता तथा रोग का द्योतक है। ऐसी हालत में बालों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

बालों की सफाई के लिए तथा उनको स्वास्थ्य करना हो तो उन्हें आंवला, शिकाकाई, दही आदि की सहायता से धोना और स्वच्छ रखना चाहिये - और उनमें नारियल, सरसों अथवा तिल का तेल डालना और उसे मल कर बालों की जड़ों में पहुंचाना आवश्यक है। साबुन से सफाई तो सिर की हो जाती है परन्तु वह बालों की जड़ों को कमजोर करता है। ऐसे ही तरह-तरह के कृत्रिम सुगंध वाले तेल भी इनको कमजोर करते हैं। तेल लगाते समय बालों की जड़ों तक अंगुलियों के पोरों द्वारा धीरे-धीरे मलना चाहिए जिससे तेल का प्रवेश बालों की जड़ों तक हो, रक्त संचार ठीक हो और मस्तिष्क तथा बाल दोनों ही स्वस्थ हों।

अधिक आयु होने पर पुरुष व स्त्री दोनों ही के बाल सफेद होने लगते हैं। कुछ महानुभावों को हमने देखा है कि वे बाल काले रखने के लिए खिजाव आदि रंगों को काम में लेते हैं। इनसे थोड़े समय तक तो लाभ मिलता है परन्तु इनसे हानि भी होती है और सारे बाल शीघ्र ही सफेद हो जाते हैं। सफेद बाल बुज़ुर्गी की निशानी है - फिर न जाने क्यों लोग बुज़ुर्गी से घबरा कर युवा ही दिखते रहना चाहते हैं।

(vi) आँखें - आँखें ऐसी इन्द्रियाँ है, जिनके न होने से सारा संसार ही अंधकारमय हो जाता है। अतः आँखों की संभाल बहुत आवश्यक है। बच्चों को मातायें काजल लगाया करती थीं। आजकल डाक्टर काजल को मना करते हैं और हम उनकी सलाह मानने के लिए अपने आपको विवश पाते हैं। काजल हमारी परम्परा के अनुसार आँखों के लिए आवश्यक भी है और एक प्रकार का शृंगार (स्त्रियों के लिए विशेष) भी है। अब भी कुछ परिवारों में दीपावली की रात्रि को काजल पाड़ कर लगाने की प्रथा है। बच्चों को काजल रोज प्रातः लगाने की प्रथा अच्छी है। इसे अपनाना चाहिए। काजल भी अब विशेष प्रकार के गुणकारी बनने लगे हैं। इसी प्रकार सुरमा लगाने की प्रथा भी अच्छी है, परन्तु अब यह भी फैशन के विपरीत मानी जाती है।

इस असावधानी लापरवाही का फल हम स्पष्ट देख रहे हैं कि बहुधा हर बच्चा चश्मा लगाने लगा है। चश्मे से दिखने तो अच्छा लगाता है परन्तु यह भी देखने में आया है कि इससे दृष्टि गिरना बन्द नहीं होती और धीरे-धीरे चश्मे का नम्बर बढ़ता ही जाता है।

बड़ी-बड़ी आँखें सुन्दर मानी जाती हैं। आर्य वंश की सन्तानों की आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं परन्तु चीन, जापान, बर्मा आदि देशों में अधिकतर मानवों की आँखें छोटी होती हैं। यूरोप में भी बड़ी आँखों वाले मानव कम ही दिखाई पड़ते हैं। अधिकतर वहां भी आँखें छोटी होती हैं।

आँख का छोटा बड़ा होना नेत्र की दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं रखता।

यदि आपको भी काजल या सुरमे से चिढ़ है तो कोई भी आई-ड्राप नित्य प्रतिदिन आँखों में डालते रहिये और परिवार में सबके भी डालते रहिये - विशेषकर बच्चों के। इससे पर्याप्त लाभ होगा।

शुद्ध मधु (शहद) : छोटी मक्खी का शहद यदि मिल जाये तो उसे सलाई द्वारा सोने से पहले दोनों आँखों में लगाना विशेष गुण करता है। दृष्टि मन्द नहीं होती और अधिक आयु होने पर भी दृष्टि सामान्य बनी रहती है।

बुढ़ापे में एक रोग जिसे मोतियाबिन्द (कैटरेक्ट) कहते है, सामान्यतः हो जाता है । इस रोग से बचने के लिए भी आधुनिक साधन सिनेरेरिया मेरिटिया (Cineraria Maritima) बिन्दु रूप में डालने से मोतियाबिन्द रुकता तो अवश्य है परन्तु उसके ह्रास की गति कम हो जाती है, रुकती नहीं । जब मोतियाबिन्द परिपक्व होता है तो दृष्टि लगभग जाती ही रहती हैं उस समय डाक्टर (नेत्र विशेषज्ञ) शल्य चिकित्सा द्वारा इसे (कैटरेक्ट को) नेत्रों की पुतलियों पर से काटकर हटा देते हैं जिससे फिर दृष्टि निकल आती है । इसे सामान्य करने के लिए ऐनक (चश्मा) डाक्टर दे देते हैं । यह शल्य चिकित्सा बहुत लाभदायक है । जो आँख पहले खराब हो उसे पहले, फिर दूसरी को बनवाना उचित है । आपरेशन के समय आँख के अन्दर पुतली पर ही कृत्रिम लेन्स भी अनेक डाक्टर लगाने लगे हैं जो बहुत अच्छा है ।

इसके पश्चात् भी आँखों में शहद अथवा सिनेरेरिया डालते रहने से दृष्टि का ह्रास रुकता है ।

(vii) नाक - नाक के दोनों नथुने मुख्यतः श्वास-प्रश्वास का काम करते हैं । हमारे शास्त्रों में दाहिने नथुने से आने-जाने वाले श्वास-प्रश्वास को सूर्य स्वर तथा बाएँ नथुने वाले श्वास-प्रश्वास को चन्द्र स्वर कहा जाता है ।

दाहिने सूर्य स्वर को गर्म तथा बाएँ चन्द्र स्वर को ठंडा कहा गया है । नाक के अन्दर की त्वचा बहुत कोमल होती है । इसमें साबुन आदि नहीं लगाना चाहिये । जल से ही इसकी सफाई करनी चाहिये ।

भोजन के लिये दाहिना स्वर तथा तरल पेय के लिए बाएँ स्वर को उपयुक्त बतलाया है । कभी-कभी दोनों ही स्वर बराबर से चलते रहते हैं परन्तु ऐसा सामान्यतः सदा नहीं होता और हमारी आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार ये स्वर (श्वास-प्रश्वास) बदलते रहते हैं ।

जठर की पाचन क्रिया दाहिने स्वर में अच्छी - होती है और पतले पेय बाएँ स्वर में पचाने में सहायता मिलती है ।

इसके अतिरिक्त स्वरोदय नामक एक विद्या बहुत पहले कभी भगवान शिव ने भगवती पार्वती को बताई थी। अब भी "शिवस्वरोदय" के नाम से पुस्तक में उपलब्ध हैं। सन्तों के यहाँ इस श्वास-प्रश्वास द्वारा भगवान का स्मरण भी बतलाया जाता है। साधन सरल हैं - संतों में सद्गुरु को भगवान का प्रतीक मानते हैं और उनसे अपना सम्बन्ध इस प्रकार जोड़ते हैं कि जो श्वास आ रही है उन्हीं से आ रही हैं और जो हम छोड़ रहे हैं वह उनमें प्रवेश कर रही है। इसका विस्तृत विवरण आगे अध्यात्म के भाग में हम पाठकों को देना उचित समझते हैं।

श्वास जो हम लेते हैं नाक से मस्तिष्क के नीचे होकर गले (श्वास नली) के द्वारा हमारे फेफड़ों में जाती है। श्वास वायु में जो ऑक्सीजन होता है वह रक्त जो शुद्धिकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत फेफड़ों में सफाई के लिए आता रहता है, उसमें मिलकर उसका शोधन करता है, तथा उसमें जो अशुद्ध भाग होता है उसे श्वास के साथ बाहर निकाल देता है। यह प्रक्रिया हमारे जाने-अनजाने सर्वदा चौबीसों घण्टे होती रहती है।

कभी हमें शीत (सर्दी) का प्रकोप हो जाता है तो नासिका द्वारा एक प्रकार का गाढ़ा पतला मवाद निकलने लगता है, छींकें आती हैं और कभी-कभी ज्वर का प्रकोप भी हो जाता है। इससे कुछ समय के लिए कष्ट हो जाता है जो साधारणतया स्वतः ही तीन-चार दिन में अथवा साधारण उपचार से ठीक हो जाता है। साधारण नमक थोड़े गुनगुने जल में मिलाकर उससे गरारा करने अथवा इसी नमक युक्त जल से नथुनों को धोने तथा नाक के बायें स्वर से थोड़ा नमक मिला जल ऊपर चढ़ा कर हलक तक साफ करने से शीघ्र आराम हो जाता है।

नाक के श्वास-प्रश्वास द्वारा ही प्राणायाम की क्रिया भी की जाती है। यह एक कठिन साधना है। इसको पुस्तकों में देखकर अथवा किसी के कहने पर करना कभी-कभी भयानक हो जाता है। अब तो प्राणायाम के जानकार भी ढूँढ़े नहीं मिलते। अतः सन्तों ने इसे बिना नियमित रूप से सीखे करने का निषेध ही किया हैं परन्तु यह विद्या अवश्य ही बहुत उपयोगी है। हमारे शास्त्रों ने इसकी बहुत महिमा गाई है।

(viii) कान - कानों का कार्य जो कुछ भी शब्द हो उसको सुनना और

मस्तिष्क को पहुंचाना है। इसके उपरान्त आगे की क्रिया होती है उसका संबंध कानों से नहीं होता। इनका कार्य केवल सुनना तथा सुने हुए शब्दों को मस्तिष्क तक पहुंचाना मात्र है। कानों के भीतर अत्यन्त सूक्ष्म एक परदा जिसका रूप त्वचा की एक पतली झिल्ली का होता है - सुरक्षित रहता है जो सुनने का कार्य करता है। इसमें विकार आ जाने से सुनने में बाधा आ जाती है।

कभी-कभी कानों में सरसों का तेल (गुनगुना) डालने की पुरानी प्रथा है, परन्तु आजकल के डाक्टर इसको भी मना करते हैं और अपने द्वारा बनाये गये कृत्रिम लोशन आदि ही आवश्यकता पड़ने पर डालने को कहते हैं। गुनगुने जल से पिचकारी की सहायता से कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर इन्हें साफ किया जाता है।

हमारे पुराने विधान के अनुसार हाथ की सबसे छोटी अंगुली तेल में डालकर उसे कान में डालकर हिला देने से बहुत थोड़ी मात्रा तेल की अन्दर चली जाती है जो कानों के रख रखाव के लिए पर्याप्त होती है। ऐसा सप्ताह में एक दो बार कर लेने में कोई दोष नहीं है लाभ ही है। कान में तिनका सींक आदि नहीं डालना चाहिए।

इस इन्द्रिय के खराब हो जाने पर ऑपरेशन द्वारा आजकल ठीक कर देने की सुविधा भी हो गई है। कुछ महानुभाव सुनने में सहायता के लिए हियरिंग एड (Hearing Aid) भी लगा लेते हैं जिससे आवाज तेज होकर सुनाई पड़ जाती है। यह भी एक आवश्यक इन्द्रिय हैं अतः इसकी संभवतया रख-रखाव भी आवश्यक है।

(ix) शरीर का सिर के नीचे का भाग - सिर तथा सिर प्रदेश में स्थित आँखें, मुख, नाक, कान, दांत, जीभ, गला इत्यादि की सफाई के बाद शरीर के मध्य या जिसमें दोनों हाथ, उसमें बाजू, कोहनियां, कलाई, हथेली, उसका पृष्ठ भाग, अंगुलियाँ नाखून सम्मिलित हैं, सामने का भाग (सीना, पेट) तथा पीछे का भाग, पीठ, कमर आदि इस सब की सफाई स्नान के समय दोनों हाथों द्वारा की जाती है। सामान्यतः इसी प्रकार शरीर के निम्न भाग जिसमें जननेन्द्रिय, गुदा, जंघायें, घुटने,

पिंडलियाँ, पैर, एड़ियाँ, तलवे, अंगुलियाँ, नाखून आदि सभी आ जाते हैं इन सब की सफाई नित्य प्रति आवश्यक है। शरीर के जिस भाग की सफाई नहीं होगी, वही रोगग्रस्त हो सकता है अतः इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इनमें से हाथ पैर तो हम दिन में कई बार धोते रहते हैं। प्रातः उठ कर शौचादि के पश्चात तो अवश्य ही इनकी सफाई होती है। जल से, मिट्टी से, साबुन से जो भी मिले, जिस समय सुविधा हो, सफाई करते हैं परन्तु बाकी मध्य भाग तथा निम्न भाग की सफाई स्नान द्वारा ही होती है। स्नान में क्या और किस प्रकार करना चाहिए यह-सब आपको आगे स्नान की चर्चा में मिलेगा।

2. स्नान

यूं तो स्नान भी नित्य कर्म के अन्तर्गत आता है परन्तु इसके बारे में हम आपको विशेष जानकारी अथवा सुझाव देना चाहते हैं। अतः इसे अलग विषय बनाना चाहा है। कुछ महानुभाव स्नान को केवल औपचारिकता मात्र मानते हैं। उन्हें स्नान से न तो आराम मिलता है और न ही वे इसे आवश्यक समझते हैं। ऐसे महानुभाव, विशेषकर शीतकाल में, कई दिन तक स्नान ही नहीं करते, केवल मुंह धो लिया, कभी हाथ-पैर भी धो लिये, अन्यथा इसको भी टाल गये। मोज़े गरम पहने हैं। उन्हें कौन उतारे ? फिर भी तो पहनने पड़ेंगे, इत्यादि वे दलील देते हैं। सप्ताह दो सप्ताह में कभी स्नान किया भी तो केवल औपचारिक भावना से आवश्यकता से नहीं।

कुछ महानुभाव स्नान मात्र को आवश्यक मान कर स्नान तो रोज करते हैं परन्तु प्रातः शौचादि के पश्चात् चाय-नाश्ता सब करते हैं। और जब ऑफिस अथवा काम पर जाने का समय होता है तो स्नान और भोजन दोनों ही जल्दी-जल्दी में करते हैं, जिससे कार्यालय के लिए देर न हो जावे। उनके हिसाब से भगवान के लिये कोई समय ही नहीं, ना ही वे इसे आवश्यक मानते है। स्नान में भी केवल जल शरीर पर डाला और पोंछ लिया। ऐसे स्नान से कोई लाभ अथवा स्वास्थ्य लाभ नहीं होता। जल्दी में किया हुआ भोजन भी पूरा गुण नहीं करता। पाचन सही नहीं होता।

स्वस्थ रहने के लिए स्नान एक आवश्यक कार्यक्रम है। शरीर की सफाई, शुद्धि के अतिरिक्त इससे स्वास्थ्य लाभ में पूर्ण सहायता मिलती है। यह सब हम पाठकों के लिए सविस्तार लिख रहे हैं। अब हम इस आवश्यक दैनिक कार्य के विषय में हमारे पाठकों को कुछ आवश्यक बातें बतलाना चाहते हैं। स्नान जितने ठंडे जल से किया जाए उसका उतना ही अधिक लाभ है। सामान्यतः ताजा जल से स्नान करना चाहिए। शीतकाल में अथवा दुर्बल शरीर हो जाने के कारण गर्म जल भी ले लिया जाय तो उससे कोई हानि नहीं है। परन्तु जहाँ तक हो सके शरीर की गर्मी से अधिक गर्म जल नहीं लेना चाहिए। इसका नियन्त्रण इस प्रकार से हो सकता है कि हम जल हाथ पैरों पर डालकर देखें कि अधिक गर्म तो नहीं लगता फिर सिर पर डालकर देखें कि गर्म तो नहीं लगता - भले ही ठंडा न लगे परन्तु गर्म भी न लगे, स्नान के लिए जल इतना ही गर्म रखना चाहिए। सामान्यतः ठंडा जल स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभदायक है।

(i) घर्षण स्नान - स्नान के समय शरीर को जल तथा आवश्यकतानुसार साबुन लगाकर गीला और चिकना करके उसे हाथों से अच्छी तरह मलना व रगड़ना चाहिए। इससे अभिप्राय यह है कि शरीर में रक्त का संचार अच्छा हो। शरीर के किसी भी भाग में किसी कारण से रुका हुआ रक्त वहां से निकल कर रक्त की मुख्य धारा में मिले और उसके स्थान पर शुद्ध रक्त पहुंच जाए। शरीर को रगड़ते समय ध्यान रहे कि आप रक्त को हृदय की ओर प्रेरित कर रहे हैं। इस प्रकार उंगलियों के नाख़ुनों से प्रारंभ करके ऊपर नीचे अंगुलियाँ चारों ओर से रगड़ना फिर हथेलियों को, हाथ की पृष्ठ को, कलाई कोहनियों, कोहनियों के ऊपर बाजू को, बगल को, कंधों को इस प्रकार रगड़ें कि रक्त को हृदय की और प्रवाहित होने में सहायता मिले। इसमें आपको श्रम होगा। यह श्रम व्यायाम है। इसका अत्यधिक लाभ भी आपको ही होगा।

इसी प्रकार पैरों को भी मलिये अंगुलियों से आरम्भ कीजिये, उन्हें चारों ओर से भली प्रकार मलिये। किसी अंगुली का कोई भी भाग नाखून आदि इस घर्षण से बच न सके। फिर पैर के नीचे का तलवा, टखने आदि फिर पिंडलियाँ घुटने तथा उसके नीचे का भाग, जंघा पर चारों ओर से जड़ों तक, कटि प्रदेश सभी को रगड़िये

। ध्यान रहे कि आप हृदय की ओर ही रक्त का संचालन कर रहे हैं। पैरों में भी पहले दाहिना, फिर बाँया पैर मलिये।

सिर पर भी, ऊपर नीचे सामने चेहरा आदि मलते हुए गर्दन पर आ जायें। फिर कंधों पर होते हुए शरीर के मध्य भाग पीठ आदि को मलिये। रक्त हृदय की ओर ही संचालित किया जाना चाहिए इसका विशेष ध्यान रहे।

गीला शरीर हो तो घर्षण का काम सरल हो जाता है अतः जल से शरीर को आवश्यक्तानुसार गीला करते जायें। आवश्यक्तानुसार साबुन भी काम में लेना चाहिये। इससे सफाई अच्छी होती है।

साबुन लगाते समय यह सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए कि साबुन की टिकिया को शरीर पर न रगड़ें। हाथ में साबुन के झाग बनाकर शरीर पर लगाएं। शरीर में किसी भी प्रकार का प्रदूषण (इन्फेक्शन) हो तो यह साबुन के द्वारा दूसरों को भी हानि पहुंचा सकता है। उचित होगा कि अपना नहाने का साबुन अलग ही रखें। यह भी घर्षण स्नान ही है जिसमें हाथों द्वारा शरीर को स्नान के समय रगड़ना व घर्षण का कार्य करते हैं।

स्नान का समय प्रातः शौच के पश्चात् ही होना चाहिए। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं हमारे कई मित्रों को हमने देखा है कि वे शौच के बाद चाय पीते हैं और अपने कार्य में लग जाते हैं। और स्नान करने तब जाते हैं जब भोजन का समय होता है तथा भोजन के पश्चात् तुरन्त अपने दैनिक कार्य नौकरी व्यवसाय आदि पर भागते-दौड़ते जाते हैं। यह अनुचित है। स्नान के पश्चात् कुछ महानुभाव भगवद् स्मरण अथवा प्रार्थना आदि का आयोजन भी अपने नित्य कर्म में रखते हैं। देर से स्नान करने वालों को सभी कार्य साधारणतः जल्दी-जल्दी करने पड़ते हैं। इन सभी कार्यों को जल्दी-जल्दी में बेगार समझ कर भगवद् स्मरण करना क्या लाभ करेगा ? आप ही सोचें।

हमारी एक पुरानी परम्परा यह भी रही है कि शरद और शीत ऋतु में जब शरीर की त्वचा में सूखापन (खुश्की) आने लगती है, तब तिल या सरसों के तेल की

मालिश शरीर पर करते हैं। जैसे-जैसे आयु अधिक होती है यह शुष्कता भी शरीर पर बढ़ती जाती है अतः इसके लिए शरीर पर तेल का मर्दन करना आवश्यक हो जाता है। स्नान के पहले ही यह कार्य भी होना चाहिए और तेल मलने के पश्चात् थोड़े समय बाद जब शरीर गर्म न रहे स्नान करना चाहिए। साबुन की सहायता से शरीर साफ कर सकते हैं। फिर सूखे तौलिये से पोंछकर शरीर सुखा लेना चाहिए।

एक आवश्यक प्रयोग यह है कि स्नान के पहले मूत्र त्याग अवश्य करना चाहिए। इसका सदा ध्यान रखें और इसमें भूल न करें। इसी प्रकार भोजन के तुरंत बाद भी मूत्र त्याग करना चाहिए। इन दो-समय मूत्र त्याग करने वाले मूत्र रोग से सुरक्षित रहते है।

हम सभी धर्मों के मानने वाले यह अवश्य मानते हैं कि हमें जो कुछ भी संसार में मिला अथवा मिल रहा है वह भगवान की कृपा से ही मिला और मिल रहा है। उस भगवान को धन्यवाद देने के लिए हम समय अलग से निकालें। ऐसा न करके हम इस कार्य के लिए जो भी समय नियत करते है उसमें भी जल्दी करके एक प्रकार से बेगार करते हैं। क्या इस बेगार से हम प्रभु की प्रसन्नता, कृपा दया प्राप्त कर सकते हैं और क्या आपकी यह नियति उसे मालूम नहीं है ? यह आपके विचार करने का विषय है। हम एक बार फिर अपने पाठकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हैं।

(ii) पोरवा स्नान - हमारे अनुभव में आये अब एक ऐसे स्नान के विषय में हम पाठकों को बतलाना चाहते है कि जिसमें घर्षण स्नान के अनुपात में परिश्रम कम तथा लाभ अधिक है। हम इसे विशेष प्रकार का स्नान ही कह सकते हैं। इसमें आपको अपने हाथों, हथेलियों के स्थान पर हाथ की अँगुलियों के पोरों से ही शरीर को रगड़ना होगा। अँगुलियों के नाखून कटे हुए और रेत कर गोल किए हुए होने चाहिए जिससे रगड़ करते समय कोमल त्वचा के छिल जाने तथा इसमें छोटे मोटे घाव बन जाने की आशंका न रहे। इस स्नान में विशेष कार्य हमारी अंगुलियों के पोरवों से होता है अतः हम इसे पोरवा स्नान कहना उपयुक्त समझते हैं - और भी इसके नाम हो सकते हैं।

इन अंगुलियों के पोरों से धीर-धीरे रगड़ने का कार्य उसी भांति सीधे पैर की अंगुलियों से आरम्भ कीजिए और पोरों की नोक से धीरे-धीरे इस प्रकार रगड़िये कि पैरों की अंगुलियों, नाखून तथा अंगुलियों की जड़ें चारों ओर से रगड़ी जाए फिर पैर की पृष्ठ तलवे और एड़ी, फिर टखने और पिंडलियाँ, घुटने, जाँघें (जड़ों तक)। पहले दाहिना पैर फिर बाँया पैर इसी भाँति बाएँ पैर की अँगुलियों के पोरों से रगड़ें। ध्यान रहे कि आप शरीर के रक्त को हृदय की ओर जाने को प्रेरित कर रहे हैं। पैर से आरम्भ करना हम इसलिए उपयुक्त समझते हैं कि पैर हृदय से सबसे अधिक दूर हैं। दाहिना बाएँ से अधिक दूर है।

पैरों का कार्य समाप्त होने पर हाथों को लें और दाहिने हाथ की अँगुलियों से रगड़ना आरम्भ करें। ध्यान रहे कि आगे पीछे ऊपर नीचे अंगुलियों के बाद हाथों का कोई भी भाग इस रगड़ से बचे नहीं और आप रक्त को हृदय की ओर ही प्रेरित करते रहें। हाथों के बाद ऊपर कलाइयों, कोहनियों, बाजुओं को चारों ओर से कंधों और बगलों को भी इसी प्रकार रगड़ें।

इसके बाद सिर ऊपर से पीछे होकर तथा सामने चेहरे पर होते हुए गले पर उतर आयें। फिर सामने का भाग दोनों पार्श्व तथा पीठ का भाग। रक्त को हृदय की ओर प्रेरित करते रहना चाहिए। इस सब रगड़ने के काम में निश्चय ही आपको हाथों से थोड़ा जोर-जोर से दबाकर मलने के स्थान पर परिश्रम कम होगा। और स्नान का जो मुख्य ध्येय रक्त संचार को अच्छा करने का है यह स्नान घर्षण स्नान से भी अधिक लाभदायक होगा। शरीर पर चिकनाई के लिए साबुन जल के साथ प्रयोग करना चाहिए इससे रगड़ने का कार्य सरल होगा व सुविधा भी रहेगी।

तत्पश्चात् जल से भली भांति शरीर को धो डालें। जल सिर से डालना आरम्भ करें और नीचे पोरों तक को हाथों से ऐड़ियों व अंगुलियों को भली भांति धोवें। फिर सूखे तौलिये से शरीर को थोड़ा जोर लगाकर पोंछें जिससे नमी (गीलापन) सब सोख लिया जावे। चाहें तो थोड़ा शरीर को हाथों से मल लें। फिर कपड़े पहनें।

इस स्नान का लाभ यह हैं कि शरीर के प्रत्येक भाग से रुका हुआ रक्त

हृदय में पहुँच कर शुद्ध होता और पुनः मुख्य धारा में सम्मिलित हो जाता है। शरीर में यदि कोई त्वचा का छोटा मोटा रोग हो तो स्वतः ही अच्छा हो जाता है। शरीर में ताजगी और शक्ति का संचार अन्य स्नानों की तुलना में इस स्नान में अधिक होता है।

3. व्यायाम

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए व्यायाम भी एक आवश्यक साधन है। साधारण गृहस्थ जीवन में भी इसकी आवश्यकता है। पुराने ढंग का व्यायाम दण्ड, बैठक, मुगदर कुश्ती आदि के द्वारा होता था। अब कई प्रकार के व्यायाम का आविष्कार हुआ है जो सहज भी हैं और लाभदायक भी हैं।

कुश्ती, पहलवानी, शारीरिक प्रदर्शन, लम्बी छोटी दौड़, जिम्नास्टिक आदि का रिवाज भी देखने में आता है। गृहस्थ जीवन में हमें भी इनमें से कोई एक दो या अधिक सरल व्यायाम अपने लिए चुन लेना चाहिए जिन्हें हम सरलता, सुविधा अनुसार सदा करते रह सकें। समय इसके लिए प्रातःकाल तो उत्तम होता है दूसरा सूर्यास्त के पहले। व्यक्तिगत सुविधा के अनुसार 15 से 30 मिनट, किसी समय थोड़ा व्यायाम अवश्य कर लेना चाहिए। इससे शरीर में बल बना रहता हैं और बढ़ता भी हैं। धारण शक्ति (रोग सहने की शक्ति) भी बढ़ती है।

रोग रहित रहना ही स्वस्थ जीवन है। मोटा होना अथवा बहुत हृष्ट-पुष्ट होना जिसके साथ कोई रोग लगा रहना, जैसा साधारणतया होता है, स्वस्थ जीवन नहीं है। मोटे स्थूलकाय मनुष्यों को अपने अवयवों के द्वारा अधिक श्रम करना पड़ता है। उन्हें सदा ही अपने पैरों पर अधिक भार लेकर चलना पड़ता है, उनके पैर शीघ्र थकते हैं। अधिक श्रम से अथवा थक जाने से जीवन शक्ति का ह्रास होना स्वाभाविक है। पहलवानों तथा शारीरिक प्रदर्शन के लिये व्यायाम करने वालों की भी आयु का ह्रास होता है। अतः हमें सामान्य जीवन जीना और उसमें अपना स्वभाव ऐसा बनाना चाहिए कि जिसके द्वारा हमारी जीवन-शक्ति का ह्रास न होकर संचय ही होता रहे। रोगों से बचने के लिये हमें अपना जीवन सभी प्रकार से नियंत्रित करना होगा, जिसमें 'अति सर्वत्र वर्जयेत' अर्थात् अति (आवश्यक से

अधिक) कोई भी कार्य न हो । पाचन क्रिया को नियमित रखने के लिये थोड़ा टहलना अथवा प्रातः घूमना या थोड़ा व्यायाम कर लेना, यह स्वास्थ्य में वृद्धि करता है।

बहुत पहले कभी हमने पढ़ा था कि एक नवाब साहब इतने मोटे हो गये कि वे अपने आप मल विसर्जन के पश्चात् जल से शुद्धि स्वयं नहीं कर पाते थे और नौकर (खिदमतगार) ही दोनों ओर लम्बे कपड़े से पानी डालकर दोनों ओर से इधर-उधर खींचकर ही उनके मलद्वार की सफाई करते थे। यह कैसा जीवन हुआ ?

4. भोजन

स्वस्थ रहने के लिये सबसे पहले हमें अपने भोजन को नियन्त्रित करना चाहिए। यह निश्चय करने में कि किस मात्रा में हमारा भोजन हो जिससे हम भूखे न रहें तथा हमारी आवश्यकता से अधिक भी न खालें - आपको कुछ समय (3-4) अथवा (7-8) दिन भी लग सकते हैं परन्तु इसे निश्चित कर लेने के पश्चात आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि कभी भी किसी कारण से उस मात्रा से अधिक न खायें। यदि हम स्वस्थ रहना चाहते हैं तो यह नियन्त्रण हमें अपने ऊपर करना ही पड़ेगा। जैसे-जैसे आयु अधिक होती जाए भोजन (ठोस भोजन) की मात्रा में कमी करते जाना चाहिये। याद रखें कि हमें जीने के लिये खाना चाहिये, न कि खाने के लिये जीना चाहिये।

इसका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि हम आपको भूखा रहने का परामर्श दे रहे हैं। भोजन तीन प्रकार के होते हैं - पहला तो ठोस पदार्थ, जैसे रोटी, पूरी, पराँठा, मिठाई इत्यादि - दूसरा रसा अर्थात् पतला पदार्थ जैसे दूध, सब्जी का रसा अर्थात् पतला पदार्थ इत्यादि (जल नहीं)। तीसरा इन दोनों के बीच का जैसे दाल, साग, हरा, सूखा अथवा रसेदार दही इत्यादि। हमें पहले की मात्रा निर्धारित कर लेनी चाहिए। दूसरी तथा तीसरी प्रकार से अपनी उदरपूर्ति कर सकते हैं। इन सब को मिला कर भी अधिक न खायें। मोटे शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि पेट भर तो खाये, परंतु ठूंस कर न खायें। एक चौबे ने पेट दर्द के समय अपने

मित्र को उलाहना दिया था कि चूर्ण के लिए पेट में स्थान होता तो एक लड्डू और न खा लेता ? ऐसे कार्यों से ही नहीं वरन विचारों से भी दूर रहना चाहिए।

भोजन के साथ जल न पियें और अन्त में तो कदापि न पियें। अन्त में जल पीने से पाचन के लिये पाचन ग्रन्थियों में से जो रस निकल कर भोजन में मिलकर उसे पचाने में सहायक होता है वह जल में मिलने से पतला और निर्बल हो जाता है जिससे पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। यदि जल पीने का स्वभाव पड़ गया हो तो उसे धीरे-धीरे परन्तु शिघ्रातिशीघ्र, छोड़ देना चाहिए और भोजन के अन्त में बिना जल पिये ही उठ जाना चाहिए। कुल्ला करके मुंह को साफ करना चाहिए।

भोजन के लगभग एक घण्टा बाद जल पीना चाहिए। और खूब पीना चाहिए। फिर जब प्यास लगे तब फिर जल पीना चाहिए। यदि भोजन के समय जल नहीं पियेंगे तो लगभग एक घण्टा बाद आपको प्यास लगेगी। उस समय आपको जल बहुत अच्छा लगेगा। भोजन के समय जल पीने का स्वभाव इस प्रकार भी छोड़ा जा सकता है कि भोजन के थोड़ा पहले (दस पन्द्रह मिनट पहले) जल पी लें। ऐसा करने से भोजन के समय प्यास कम लगेगी या नहीं लगेगी। अपने ही लाभ का ध्यान रखकर इसका अभ्यास करना चाहिए। भोजन के तुरन्त बाद मुख आदि की सफाई करने के उपरान्त पेशाब अवश्य करें और फिर कुल्ला करके मुंह साफ करें। यह भी एक आवश्यक प्रयोग है। इस प्रयोग के करने वालों को कभी मूत्र रोग मसाने (Gall Bladder) आदि की बीमारी नहीं होती।

दिन भर में लगभग आठ गिलास जल तो पी ही लेना चाहिए। तीन गिलास तो प्रातः उठ कर ही पिये जा सकते हैं। इसे ऊषा पान कहते हैं और हमारे शास्त्रों के अनुसार यह बहुत लाभदायक है। इससे दिन भर प्यास कम लगती है और मस्तिष्क में तरी बनी रहती है।

सोते समय भी जल पीना चाहिए। यदि दूध एक गिलास पिया जाये तो उत्तम है। फिर भी जल का लाभ अपना ही है। रात्रि को यदि पेशाब के लिए उठना पड़े तो भी इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। कुछ महानुभाव इस डर से सोने के पहले जल नहीं पीते कि पेशाब के लिए उठना पड़ेगा। यह उचित नहीं हैं क्योंकि

इसका लाभ अधिक है।

भोजन के साथ पिया हुआ जल भोजन तथा पाचक रस में मिलकर उसे पचने में सहायक न होकर बाधक होता है। और एक घण्टा बाद जब भोजन कोष्ठ के नीचे के भाग में चला जाता है उस समय तथा उसके बाद पिया हुआ जल कोठे को धो कर साफ करता और मूत्र की राह से निकल जाता है। इस प्रकार यही जल आवश्यकतानुसार भोजन पचाने में सहायता करता है, बाकी जल कोठा साफ करने का साधन बन जाता है। आगे कोष्ठबद्धता के शीर्षक में नौलि क्रिया का अभ्यास विस्तार से मिलेगा इससे भी सामान्य होने में सहायता मिलती है। परन्तु यह फिर भी एक कृत्रिम साधन है। हमारा अनुरोध तो यह हैं कि स्वास्थ्य को अपनी ही त्रुटियों से बिगड़ने नहीं देना चाहिए। यदि किन्हीं कारणों से बिगड़ भी जाय तो उसे इन उपायों से प्रयत्न करके ठीक कर लेना चाहिए और भविष्य में बिगड़ने नहीं देना चाहिये। औषधियों की शरण में जाने से सदा ही बचते रहना चाहिए। औषधियां थोड़े समय के लिए तो गुणकारी लगती हैं फिर वही बुराइयाँ बन जाती हैं। हम सदा ही दवाई नहीं लेते रह सकते। यदि ऐसा करना पड़ा तो सामान्य स्वस्थ जीवन कहाँ रहा ?

भोजन को नियंत्रित करने, तथा ऊपर लिखे अनुसार जल पीने का अभ्यास कर लेने से ही सामान्यतः आपको ऐसा लगना चाहिए कि आपका कम से कम आधा रोग तो समाप्त हो गया। आप प्रसन्नचित्त रहने लगोगे और इस प्रयोग के फलस्वरूप बाकी बचे रोग भी ठीक हो जायेंगे।

मल विसर्जन के लिए ऐसा कहा जाता हैं कि 24 घण्टों में एक बार जाय वह योगी, दोबार जाय वह भोगी (अर्थात् सामान्य गृहस्थ), तथा तीन बार जाय वह रोगी। अपना स्वभाव एक या दोबार ही मल विसर्जन के लिए जाने का बनाना चाहिए। कोष्ठबद्धता में ऐसा स्वभाव बन जाता हैं कि देर तक संडास पर बैठ कर बलपूर्वक मल को निकालते हैं, ऐसा करने से रोग अधिक भयंकर रूप धारण कर लेता हैं। आगे चलकर अर्श (बवासीर), भगंदर आदि रोग हो जाते हैं। अतः इस स्वभाव को अपनाना ही नहीं चाहिये। यदि इसकी आदत किन्हीं कारणों से पड़ गई

तो उसे धीरे-धीरे, परन्तु शीघ्र छोड़ना चाहिए। आरम्भ में जोर न लगाने से मल साफ नहीं होगा, परन्तु मल कोठा में अधिक समय नहीं ठहर सकता अतः फिर विसर्जन की इच्छा होगी। फिर चले जावें परन्तु जोर फिर भी न लगावें। जल पीकर थोड़ा टहलने से मल का दबाव सरलता से बन जाता है। अतः जल सेवन की सहायता से इस जोर लगाने के स्वभाव को छोड़ा जा सकता है।

इन सुझावों के अनुसार कार्य करने से आपको अपना कोठा साफ रखने में सहायता मिलेगी। जब सामान्य हो जाये तब आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि ऐसी गलती कदापि न करें - जिससे यह शोधन किया गया कोष्ठक फिर बिगड़ जावे। सामान्य जीवन पर आ जाने पर आप का यह प्रयत्न रहना चाहिये कि भविष्य में भी सामान्य ही बने रहे। अपनी ही गलतियों से पाचन यंत्र को कदापि न बिगड़ने दें।

कुछ महानुभाव सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू (हुक्का) आदि धूम्रपान शौच जाने से पहले करते हैं और अपना ध्यान केन्द्रित करके मल विसर्जन को सरल करते हैं। धूम्रपान एक व्यसन हैं। सारे विश्व में इसे छोड़ने छुड़ाने का अभियान भी चल रहा है। यह एक गंदी आदत है। इसे अपनाना ही नहीं चाहिये - यदि आदत पड़ गई हो तो इसे शीघ्रता से छोड़ना चाहिये।

भोजन में दूध दही आदि अथवा इनके द्वारा बनाया हुआ भोजन विशेष गुणकारी होता है। वर्षाऋतु को छोड़कर सभी समय दही अथवा मट्ठा भोजन में अवश्य लेना चाहिये। दूध एक गिलास सोते समय लेना उत्तम है।

भोजन के पश्चात किसी प्रकार का मिष्ठान भी होना चाहिये। इनमें सबसे सरल गुड का प्रयोग है। एक डेली गुड (10-20 ग्राम) का प्रयोग पर्याप्त है। राब यदि उपलब्ध हो सके तो अति उत्तम है। इसमें लौह तत्व गुड से भी अधिक होता

प्रातः स्नान के पश्चात नींबू के रस दो चम्मच, शहद एक चम्मच जल में मिलाकर पीना विशेष गुण करता है। यह एक ऐसा शक्तिदायक प्रयोग है कि जिससे विटामिन 'सी' तथा आवश्यक तत्वों की आने वाले समय में स्वास्थ्य को सुरक्षा मिलती है। मधु शहद न मिले तो नींबू जल में लेना भी पर्याप्त गुणकारी है।

अमिष भोजन कदापि आवश्यक नहीं है। कृषि प्रधान देश होने के कारण भारतवर्ष में सदा से ही खाद्यान्न तथा अन्य प्रकार के प्राकृतिक खाद्यों की बहुतायत रही है। खेतों में अनाज, वृक्षों पर फल इत्यादि, प्रकृति की देन से यह देश सम्पन्न रहा है।

परन्तु इसी पृथ्वी पर - एशिया के उत्तरी भाग में ऐसे देश भी हैं जहां की पृथ्वी पर न तो पेड़ पौधे है - न ही खेत - सारा प्रदेश ही हिमाच्छादित रहता था और अब भी ऐसा ही है। यहां के निवासी जानवरों के मांस मछली आदि से अपना पेट भरते थे। परन्तु आधुनिक समय में यातायात के साधनों के कारण सभी आवश्यक वस्तुएँ वहां के निवासियों को उपलब्ध हो गई हैं।

उस प्राचीन समय में वहां के निवासियों को मांस मछली पर निर्भर रहना पड़ता था - अब ऐसा नहीं है। भारत में तो न यह कभी आवश्यक था न अब है। स्वाद के कारण भले ही लोग मांस खाते हों परन्तु न तो स्वास्थ्य के लिए और न ही शुद्ध जीवन के लिए यह आवश्यक है बल्कि हानिकारक भी है। अतः यह सर्वथा अशुद्ध (वरन् गंदा) और त्याज्य है।

जिन्हें शुद्ध जीवन यापन करना है, सन्मार्ग पर चल कर भगवान को पाने के मार्ग पर अग्रसर होना है-उनके लिए तो यह सर्वथा त्याज्य है।

5. कोष्ठबद्धता

सामान्यतः यदि हम अपना पेट साफ रखते हैं तो अनेकानेक रोगों के आक्रमण से अपनी सुरक्षा एक प्रकार से निश्चित ही कर लेते हैं। परन्तु यदि किन्हीं कारणों से इनमें विकार आ गया है तो प्रयत्न करके हमें उन्हें दूर करना चाहिये। कोष्ठबद्धता इन्हीं रोगों में से एक भयानक रोग है जिसके द्वारा अनेकानेक मानव कष्ट पाते हैं। हम इसी विषय पर विस्तार से चर्चा करना चाहते हैं।

साधारण बोलचाल की भाषा में इसे कब्ज, कब्जियत आदि कहा जाता है। यह एक ऐसा रोग हैं जो सामान्यतः सार्वजनिक रूप से अधिकतर मानवों को कष्ट

देता है। इसकी पहचान है -

1. शौच जाने पर कोठा साफ न होना। और मल त्याग की इच्छा बनी रहना अथवा बार-बार मल त्याग को जाना।

2. पेट में वायु भरना, वायु का घूमना, कभी-कभी पेट दर्द भी होना तथा गर्म दुर्गन्ध युक्त वायु का गुदा से सरना।

3. भूख न लगना, कभी-कभी भोजन की इच्छा ही नहीं होना। कभी-कभी भूख अधिक लगना।

4. भोजन के समय तथा पश्चात् चित्त प्रसन्न न होना।

5. सामान्य दिनचर्या में भी खिन्न रहना तथा प्रसन्नता का अभाव खटकना।

यह रोग हमारी अपनी ही भूलों के कारण होता है। भोजन करते समय हम स्वाद के कारण भोजन आवश्यकता से अधिक कर जाते हैं और ऐसा करना हमारा स्वभाव ही बन जाता है। थोड़े दिन तो इससे कष्ट नहीं लगता, परन्तु जब पाचन यन्त्र को सामान्य से अधिक कार्य अधिक समय तक करते रहना पड़ता है, तो पाचन यन्त्र दुर्बल हो जाता है, और किये हुए भोजन को ठीक-ठीक पचा नहीं पाता। इससे ऊपर लिखी कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती हैं और फिर बढ़ती जाती हैं। दूषित वायु धीरे-धीरे ऊपर पहुँच कर मस्तक को भी दूषित करती है और अनेक प्रकार के रोग शरीर में उत्पन्न होने लगते हैं। लवणादि के चूर्ण तथा आम औषधियां भी थोड़े समय के लिए लाभ पहुँचाती है जो थोड़े समय तक आराम देती है, फिर अधिक कठिनाई पैदा करती हैं। अतः यही अच्छा है कि पहले इसे होने ही नहीं देना चाहिए परन्तु हो गया हो तो इसका निराकरण समय रहते कर लेना चाहिए जिससे यह भंयकर रूप धारण न कर सके। आगे चलकर इस कोष्ठबद्धता के कारण अर्श (बवासीर) जैसे भयंकर रोग हो जाते हैं। इसके लिये हम निम्न सुझाव हमारे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं :-

(i) सबसे पहले तो हमें भोजन में सावधानी बरतनी होगी, उसे नियन्त्रित करना होगा। आप स्वयं ही अनुमान लगावें कि कितना भोजन करने से आपको सन्तोष होता हैं उसकी मात्रा निश्चित करके उसमें थोड़ा (बहुत थोड़ा) कम करके अपने भोजन की मात्रा निश्चित करें। उदाहरण के लिए यदि आप चार रोटी में पेट भर लेते हैं तो पहली सावधानी यह करें कि इस मात्रा से अधिक कभी न खायें तथा इस चार की मात्रा में से आधी रोटी कम कर दें। अतः आप साढ़े तीन रोटी अपने लिए मात्रा निश्चित कर दें और कदापि इससे अधिक न खायें। यह काम थोड़ा कठिन लगेगा क्योंकि हम भर पेट ही नहीं, उससे अधिक खाने के पहले से अभ्यस्त हैं। परन्तु अपने स्वयं के लाभार्थ आपको ऐसा करना ही होगा।

(ii) हमारे भोजन में सामान्यतः तीन प्रकार के द्रव्य होते हैं। एक तो ठोस भोजन जैसे रोटी, पूरी, पराँठा आदि। दूसरे प्रकार के तरल पदार्थ जैसे साग का रसा दूध (परन्तु जल नहीं) दही छाछ इत्यादि। तीसरा इनके मध्य का जिसमें साग भाजी आदि आते हैं। आप अपना पेट भरने के लिए इन दूसरे और तीसरे प्रकार का भोजन प्रयोग करें परन्तु वह ठोस भोजन जो पहली प्रकार का है, उसकी मात्रा निश्चित से कदापि न बढ़ावें। इस सारे भोजन की मात्रा भी इतनी न हो जिससे आपको भोजन के पश्चात् असुविधा लगे और अधिक खा लेने का अनुमान हो। इसमें हरा साग अधिक होना चाहिए आलू अरबी आदि कम हो या न हो तो ठीक होगा। भोजन के पश्चात् जल न पियें, यदि पीना पड़े तो बहुत थोड़ा - एक या दो घूंट ही पियें और धीरे-धीरे ऐसा स्वभाव बनावें कि अन्त में बिना जल पिये ही उठ जावें। भोजन के बीच में भी जहां तक हो सके जल न पियें, अथवा कम से कम पियें और स्वभाव ऐसा नियंत्रित करें कि बीच में भी इसकी आवश्यकता न रहे। एक उपाय इसका यह भी है कि भोजन के दस मिनट पहले जल पी लें इससे भूख भी लगेगी और भोजन के साथ जल की आवश्यकता भी न रहेगी।

(iii) भोजन के लगभग एक घण्टा पश्चात जल पियें और अच्छी तरह पियें। यदि आप भोजन के समय जल न पियेंगे तो भोजन के लगभग एक घण्टा बाद आपको ऐसी प्यास लगेगी कि उस समय आपको जल मिलना ही चाहिए और तब वह जल आपको बहुत अच्छा लगेगा।

(iv) प्रातः ऊषा पान के अतिरिक्त आपको दिन भर में कम से कम 5-6 लीटर जल 24 घण्टों में अवश्य पी लेना चाहिए। केवल भोजन के साथ जल न पीने का हमारा आपसे आग्रह है। भोजन के घण्टा बाद और जितना जितनी बार जल पियें उतनी ही पाचन क्रिया को सहायता मिलेगी।

(v) जिन्हें भोजन के साथ जल पीने की पुरानी आदत हो उनके लिये हमारा सुझाव है कि भोजन के 10 मिनट पहले जल पियें। उन्हें भोजन के समय प्यास कम लगेगी। भूख भी खुल जाएगी।

(vi) दोपहर के भोजन के पश्चात् आपको लेट कर 8-16-32 की क्रिया करनी चाहिए। यह इस प्रकार होगी कि सीधे लेट कर 8 श्वासें, फिर दाँयें करवट लेकर 16 श्वासें और फिर बाई करवट लेट कर 32 श्वासें लें। इन क्रियाओं को सामान्य अवस्था में करते रहना चाहिए। यदि समय हो तो अधिक भी लेटे रहना हानिकर नहीं है।

(vii) चौबीस घण्टों में दो बार कलेवा (नाश्ता) करना सामान्यतः पर्याप्त होगा। हमारे ऋषियों का भोजन तो 24 घण्टों में एक बार ही होता था। उनके अनुकरण में तो हमारे आजकल के सन्यासी भी 24 घण्टे में एक बार ही भोजन करते हैं। कुछ महानुभाव गृहस्थ होते हुए भी 24 घण्टों में एक बार ही भोजन करते हैं।

(vii) कलेवा में आजकल चाय अवश्य होती है। हमारा परामर्श है कि केवल चाय न लें उसके साथ कुछ अल्पाहार अवश्य लेवें। अल्पाहार पौष्टिक हो और अधिक न हो जो सामान्य क्षुधा को प्रभावित करे। हो सके तो दूध, मट्ठा आदि तरल पदार्थ लेवें। चाय की मात्रा भी अधिक न हो। यदि स्वभाव अधिक लेने का हो तो उसे कम करते-करते एक कप अथवा उससे भी थोड़ा कम कर लें।

(ix) जहां तक हो सके भोजन अल्पाहार आदि निश्चित समय पर ही करें - प्रातः शौच स्नान भजन आदि से निश्चित होने पर कलेवा, दोपहर को 12 अथवा 1 बजे के समय मध्यान्ह का भोजन, फिर संध्या से थोड़ा पूर्व नाश्ता और रात्रि के

पहले पहर (तीन घण्टे) समाप्त होने के पहले ही भोजन कर लेना चाहिए। सूर्यास्त के बाद जितना जल्दी हो भोजन कर लें उतना ही अच्छा है। जैन मत वालों में संध्या के पहले भोजन कर लेने की प्रथा अच्छी है। हो सके तो ऐसा करें।

(x) संध्या के भोजन के बाद थोड़ा टहलें कम से कम पन्द्रह मिनट, अधिक चाहें तो एक घण्टा तक टहल सकते हैं।

(xi) सोने से पहले थोड़ा गरम दूध पीना भी गुणकारी होता है। यदि कभी आवश्यकता हो तो इसबग़ोल की भूसी दूध के साथ ले लें। इससे मल विसर्जन में सहायता मिलेगी, कोठा साफ होगा। परन्तु इसकी आदत न पड़ जाय इसका ध्यान रहें। स्वाभाविक रूप से ही कोठा साफ रहे तो उत्तम है।

(xii) प्रातः उठने पर आज कल अपने आपको आधुनिक सभ्यता का अनुगामी समझते और बतलाते हुए कुछ महानुभाव बिना मुँह साफ किये ही चाय पीते हैं और उसे बेड-टी कह कर बहुत महत्व देते हैं। यह बेड-टी (Bed Tea) न होकर बैड-टी है (Bad Tea), यदि आप लेते हों तो इसे छोड़ दीजिये, यह आदत गंदी हैं। आवश्यक हो तो गर्म पानी पियें वह भी मुख साफ करके।

(xiii) उषा पानः- प्रातः उठ कर भलीभाँति मुख साफ करके ठण्डा जल पियें और इतना पियें कि कोठे के निम्न भाग पर दबाव पड़े। इससे मल त्याग की इच्छा प्रबल होगी। यदि फिर भी इच्छा न हो तो थोड़ा टहलें और प्रतीक्षा करें। मलत्याग के लिए न तो अधिक सण्डास पर बैठें और न ही जोर लगायें। स्वाभाविक रूप से मल निकलने दें। यदि आवश्यकता हो तो दूसरी बार चले जावें परन्तु न तो अधिक बैठें और न जोर लगावें। यह सावधानी अवश्य बरतें।

(xiv) कुछ महानुभाव बीड़ी, सिगरेट हुक्का आदि पीते हैं और उससे ध्यान कोठे की ओर लगाते हैं जिससे मल की इच्छा प्रबल हो जावे। यह आदत अच्छी नहीं है। यदि हो तो इसे त्यागने में ही भलाई हैं। धूमपान निषिद्ध भी है। परन्तु आजकल फैशन में आ गया है। इससे हानि ही हानि है। अतः इसे छोड़ना चाहिए। इच्छा शक्ति प्रबल है तो इसे छोड़ना कठिन न होगा।

यदि आप इन उपरोक्त सुझावों का नियमित रूप से पालन कर सकें तो कोष्ठबद्धता आपको ऐसे छोड़कर भागेगी कि फिर कभी आपकी ओर उसका आने का साहस ही नहीं होगा। जितना भी रोग पुराना होगा उतना ही अधिक समय इसके ठीक होने में लगेगा, परन्तु अच्छा अवश्य हो जायेगा - यह निश्चित है।

भोजन को नियन्त्रित करने से हमारा स्वास्थ्य अच्छा होता है और उसमें निरन्तर वृद्धि होती है। स्वस्थ मनुष्य ही दीर्घजीवी भी होते हैं।

हमें इस योग्य सदा रहने का प्रयत्न करना चाहिए कि अपने काम के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता न हो तथा हम दूसरों की सहायता के लिए तत्पर तथा सक्षम हों। रोगी होने पर हमें सहायता की आवश्यकता रहती है। हम दूसरों की क्या सहायता कर सकते हैं ? अपनी ही भूलों और गलत आदतों के कारण जो मानव रोग का आमन्त्रण करते हैं। वे स्वयं तो दुःखी होते ही हैं - अन्यों को भी दुःख देते हैं। अतः ऐसा करना हमारी सम्मति में तो अपराध अथवा पाप ही है।

हमें ऐसे मनुष्यों पर अवश्य ही दया आती है जो अपनी ही आदतों के कारण अस्वस्थ रहते हैं और जानते हुए भी उनसे बचने का प्रयत्न नहीं करते। फिर भी हम उन्हें यही परामर्श देंगे कि अपनी आदतों को बदलें और स्वस्थ, सात्विक जीवन व्यतीत करें। ऐसा करने से उन्हें आराम मिलेगा और वे स्वस्थ प्रसन्नचित्त जीवन व्यतीत कर सकेंगे। पाठकगण हमें क्षमा करें, इस अध्याय में आवश्यक था इसलिए हमने कुछ बातें दोहराई हैं।

अब हम हमारे पाठकों को एक ऐसा प्रयोग बतलाते हैं जिससे पुरानी कोष्ठबद्धता भी शीघ्र अच्छी हो जाती है। सर्व साधारण इसे कर सकते हैं परन्तु किसी जानकार से इसे सीख कर अभ्यास करें तो उत्तम होगा।

6. नौलि क्रिया

कोष्ठ बद्धता के लिये यह एक ऐसा प्रयोग है जिसे करने से रोग शीघ्र अच्छा

हो जाता है। यह वैदिक क्रिया है इसे नौलि क्रिया कहते हैं जिसका विवरण इस प्रकार है।

अ. प्रातः उठ कर मुख साफ कर के जल पियें, जितना सरलता से पी सकें। दो गिलास अर्थात् एक लीटर तक हो या अधिक भी हो तो कोई हानि नहीं है, अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ा लें।

आ. भूमि पर किसी बिछौने पर अथवा तख्त आदि हार्ड बैड पर सीधे लेट जावें। पैर सीधे कर ले हाथ दोनों ओर शरीर के बराबर रक्खें हथेलियाँ नीचे भूमि की ओर हों।

इ. श्वास को निकाल दें, पेट खाली कर दें, वायु के दबाव से पेट को ऊपर-नीचे करें - आरम्भ में केवल पांच बार श्वास छोड़े दे, साधारण श्वास तीन-चार लेवें जिससे सामान्य हो जावें।

ई. फिर श्वास को निकाल कर कोठा खाली करें और वायु के दबाव से पेट का कोना-कोनी अर्थात् ऊपर से नीचे व बाएँ से दाएं की ओर पेट के अवयवों को हिलावें, फिर वापस ऊपर। इस प्रकार आरम्भ में पांच बार, फिर श्वास निकाल दें। तीन-चार श्वास सामान्य होने के लिये लेवें।

उ. फिर इसी प्रकार श्वास को निकाल कर बायीं ऊपर की ओर दायीं नीचे की ओर वापिस ऊपर पेट के अवयवों को हिलावें। पाच बार - श्वास छोड़कर - साधारण श्वास चार पांच लेकर सामान्य हो जावें।

ऊ. फिर श्वास बाहर निकाल कर पेट के अवयवों को दायें नीचे बायें से दायें फिर बायें से ऊपर-फिर दायें और फिर नीचे - इस प्रकार गोलाकार में घुमावें - 5 बार। श्वास निकाल दे और 4-5 श्वास लेकर सामान्य हो जावें।

ए. फिर श्वास बाहर निकाल कर ऊपर लिखी क्रिया को विपरीत दिशा में उल्टा करें अर्थात बायें नीचे से दायें, फिर दायें ओर फिर बायें नीचे। इस प्रकार पेट

के अवयवों को घुमावें - 5 बार। सामान्य होने के लिये 4-5 या अधिक श्वास लें।

क्रिया सम्पूर्ण हुई। थोड़ा श्वास-प्रश्वास द्वारा सामान्य होकर उठ जावें। इससे कोठे के हर भाग से और आंतड़ियों में जमा पचा-अधपचा भोजन अलग होकर तथा मल को नीचे के भाग में जाने में सहायता करेगा।

हमने सुझाव दिया हैं कि श्वास को निकाल कर पेट खाली कर के उक्त पांच प्रकार का व्यायाम पाँच-पांच बार करें। आरम्भ में पांच बार ही करें। फिर एक दो सप्ताह बाद जब यह सरल हो जावे तब सात बार करें फिर नौ बार फिर ग्यारह बार इसे बढ़ा कर इक्कीस बार तक ले जावें। इतना ही पर्याप्त होगा।

इस क्रिया के बाद थोड़ा टहलें और मल त्याग की इच्छा होने पर संडास पर जावें। अधिक न बैठे, जोर न लगावें।

रोग जितना पुराना होगा उसी के अनुपात से उसे अच्छा होने में भी समय लगेगा परन्तु यदि हमारे इन सुझावों का पालन किया जाये तो पर्याप्त लाभ होने की तथा अंततः सामान्य स्वास्थ्य प्राप्त होने की आशा ही नही, हमें तो विश्वास भी है।

7. रोग और चिकित्सा

हम पहले ही कह आए हैं कि सामान्यतः हमें रोग मुक्त रहना ही चाहिए। यदि हमारा जीवन रहन-सहन नियमित है और हम जीवन के साधारण प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं करते तो रोग से बचे रहना हमारे जीवन का क्रम बन जाना चाहिए।

यदि हम अपने जीवन को स्वाभाविक तथा प्राकृतिक बना सकें तो साधारणतया हम पर रोग का आक्रमण होना ही नहीं चाहिए। यदि किन्हीं कारणों से हो भी जाए तो हमें उससे मुक्ति पाने में अधिक असुविधा नहीं होनी चाहिए।

नियमित जीवन से हमारी धारण शक्ति (रजिस्टेन्स) बढ़ जाती हैं जिससे छोटे-मोटे रोग तो हमारे पास फटकते ही नहीं। यही निरोगी जीवन है इसके लिए

दैनिक जीवन क्रम हमारा ऐसा हो कि कभी भी किसी प्रकार की अधिकता (Excess) न होने पाये। ऐसा करने से हमारे शरीर तथा मन में रोगों से लड़ने तथा उन पर विजय पाते रहने की क्षमता बढ़ जायेगी और सदा ही हमें रोग से मुक्ति मिलती रहेगी।

यहां लिखी सभी बातें हमारी निजी अनुभव की हैं आप इन्हें अपना कर चाहें तो थोड़े समय परीक्षा कर लीजिये। हमें विश्वास है कि परीक्षा करने पर आप भी इसे लाभ दायक-समझकर भविष्य के लिए अवश्य अपना लेंगे।

जीवन में ऐसे क्षण भी आ सकते हैं कि हम सारी साधनाएँ कार्यक्रम आदि नियमित रखते हुए भी यदा-कदा अस्वस्थ हो जाते हैं। इसमें ऐसे कारण भी हो सकते है जिन पर हमारा कोई वश नहीं हैं। ऐसे समय हमें थोड़ी चिकित्सा की भी आवश्यकता हो सकती है। इसके लिए भी हम अपने सुझाव आपके सम्मुख रखने का प्रयत्न करते हैं।

आजकल चिकित्सा पद्धति पर एलोपैथिक डाक्टरों का आधिपत्य है। स्वतंत्रता के पहले इसका बहुत-बहुत प्रचार हुआ। पाश्चात्य देशों में हुए अनुसंधान आदि के आधार पर भारत में भी इस चिकित्सा मार्ग में उन्नति होती रही और अब भी हो रही हैं।

पहले कभी भारत में आयुर्वेद पद्धति द्वारा ही चिकित्सा होती थी। फिर जब मुस्लिम देशों का आधिपत्य भारत में रहा तब यूनानी पद्धति (हकीम आदि ने जोर पकड़ा और कुछ स्थानों में थोड़ा बहुत कार्य इनका भी चला, परन्तु बाद में जब एलोपैथिक पद्धति का विस्तार हुआ तो आयुर्वेद, यूनानी, सभी पीछे रह गये। एम०बी०बी०एस० आदि के बड़े-बड़े कॉलेज और अस्पताल खुले और यह पद्धति हमारे देश पर ऐसी छाई कि प्रत्येक नागरिक ही इस पर आश्रित रहने लगा।

भारत की स्वतंत्रता के कुछ बाद में हमारे शासकों ने इस ओर ध्यान दिया और आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी के चिकित्सकों को आगे आने का अवसर मिला परन्तु एलोपैथिक शाखा अपना वर्चस्व बनाये रखने में अभी तक सफल ही मानी

जा रही है।

हमें एलोपैथी से इसलिए विरोध नहीं हैं कि वह पाश्चात्य है। हम पाश्चात्य देशों से रात दिन बहुत कुछ सीखते आ रहे हैं। परन्तु जिस प्रकार इसका प्रभाव बढ़ा है उसी प्रकार यूनानी तथा आयुर्वेदिक पद्धतियों का विकास करने का अवसर न दिया जाना एक ऐसी हमारी कमी को सामने लाता है कि जो लापरवाही (Neglect) की परिभाषा में आ जाती है।

यूनानी तथा आयुर्वेदिक औषधियां हमारे देश में उत्पन्न जड़ी बूटियाँ, मसालों तथा रात दिन काम आने वाले पदार्थों से बनती हैं। यह सब हमारे समाज तथा व्यक्तियों के अनुकूल भी होनी चाहिए। परन्तु उनका विकास तथा प्रचार रुका रहने तथा एलोपैथी का विकास प्रचार बढ़ते रहने से सर्वसाधारण के लिए इन पद्धतियों के विशेषज्ञ तथा उपलब्ध सुविधायें अब भी कम तथा नहीं के बराबर हैं।

हम अब भी देखते हैं कि हमारी घरेलू औषधियाँ, जिनके विषय में हमारे परिवार के आयु प्राप्त जन जानते हैं, वे अधिक कार्य करती हैं और विवश होकर ही हम बाहर किसी डाक्टर आदि के पास जाते हैं। परन्तु हमें शिक्षा परामर्श यही दिया जाता है कि डाक्टर के पास जाओ। किसी डाक्टर से बंधे रहो जो तुम्हारे विषय में जान कर औषधि आदि की सुविधा प्रदान करता रहे। हमारी इस प्रकार की निर्भरता के कारण ही यह पद्धति फल फूल रही है।

पहले तो हमें प्रकृति के अनुकूल रहने की आदत होनी चाहिए जिससे हम अस्वस्थ हो ही नहीं। फिर भी यदि हम अस्वस्थ हो जाते हैं तो साधारण घरेलू उपचार, व्रत, भोजन में परिवर्तन आदि का सहारा लेकर स्वास्थ्य लाभ कर लेना चाहिए। चिकित्सा पद्धति की शरण में जाने से यथाशक्ति बचते ही रहना चाहिए। यदि फिर भी आवश्यक हो तो घरेलू औषधियों आदि के द्वारा शीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर लेना चाहिए। डाक्टर वैद्य हकीम आदि के पास जाने से बचे ही रहना चाहिए। परन्तु यदि जाना ही पड़े तो पहले की आयुर्वेदिक, यूनानी पद्धतियों को ही अपनाना चाहिए।

हमारी इस पुस्तिका में आपको अपने जीवन में रहन सहन की पद्धति को ऐसा बनाने के सुझाव मिलेंगे कि जिनके द्वारा आपकी निर्भरता बाहर की चिकित्सा पर न रहे तथा उसकी आवश्यकता ही न पड़े। आप इनको अपनायें, जीवन में उतारें और लाभ उठावें। हमारा आपसे यही अनुरोध है।

कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़ कर हम यह कह सकते हैं कि हमारे अस्वस्थ होने में हमारे स्वयं की असावधानी अधिक उत्तरदायी होती हैं। इससे हम अपने आपको बचा सकते हैं। हमारे स्वयं के लाभ के लिए हम यदि सावधानी बरतते हैं तो हमारा यह उचित कार्य ही होगा। हमें इस विषय में क्या करना चाहिए यह सब जानकारी हमने आप तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

स्वास्थ्य - सम्बन्धी (तथा औषधियों के विषय में भी) आपकी जानकारी के लिए इस विषय (स्वास्थ्य) इसकी अन्यान्य पुस्तकें मासिक, साप्ताहिक, पाक्षिक पत्रिकायें ही पर्याप्त जानकारी देती रहती हैं।

8. मादक पदार्थ

(i) मदिरा (शराब) - मदिरा अर्थात शराब का जो रूप (मैक) ब्राण्डी नाम से जाना जाता है उसका आयुर्वेदिक नाम "मृत संजीवनी सुरा" हैं। इसका अर्थ मरते हुए के लिए जीवन देने वाली सुरा। आयुर्वेद की यह बहुमूल्य औषधि भी है। इस सुरा के कुछ ऐसे रूप भी हैं जिसमे नशा पाया जाता हैं। इस नशे के लिए इसका प्रयोग बहुत होने लगा है, लाभ के लिए नहीं।

पश्चिमी देशों- यूरोप, अमरीका आदि की जलवायु हमारे देश से बहुत ठंडी रहती है। वहाँ साधारणतः इसका प्रयोग दैनिक आवश्यकता की भांति ही होता है। इसे सर्दी से सुरक्षा के अभिप्राय से लिया जाता हैं और वहाँ के निवासियों का कथन है कि यह उनकी मूल आवश्यकता हैं। परन्तु गर्म देशों में रहने वालों के लिए ऐसा मानने का कोई कारण ही नहीं हो सकता। देखादेखी अथवा आँख मूंदकर उनकी नकल करना अनुचित अथवा हानिकारक ही नहीं भयावह भी है।

हमारे पुराने इतिहास में भी इसके सेवन के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। परन्तु यह प्रथा जन साधारण में न होकर राजा महाराजाओं, नवाब बादशाओं तथा इनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों तक ही सीमित रही। जन साधारण का इससे सम्बन्ध नहीं रहा।

संभवतः इस युग के पहले हमारे राजा महाराजा तपस्वी, धर्म परायण होते थे। उनके समय के इसका चलन औषधि रूप में आयुर्वेद की आवश्यकतानुसार ही होता था। साधारण जनता इसका प्रयोग नहीं करती थी। वर्तमान युग में इसका प्रयोग बढ़ा और खूब बढ़ा। आपकी जानकारी में भी अवश्य यह बात आई होगी कि मदिरा के कारण बहुतेरे व्यक्तियों के परिवारों का यहां तक कि राजा-नवाबों का जीवन भी नष्ट हुआ है और अब भी हो रहा है।

राज्यों में इसके बनाने बेचने पर प्रतिबन्ध लगाया और इतना बड़ा एक्साईज विभाग भी बन गया। इस विभाग की आय भी बहुत-बहुत हुई और हो रही है। इनका काम मदिरा का प्रचार ही नहीं वरन उसका अवैध धन्धा करने वालों की धर-पकड़ भी रहा। परन्तु इससे इसका प्रचार बढ़ता ही गया और पता नहीं इसकी चरम सीमा क्या रहेगी।

मदिरा का प्रयोग आयुर्वेदानुसार हो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परन्तु इसे आमोद-प्रमोद की वस्तु बनाना, इसकी आदत बना लेना छोटी-बड़ी सभा सोसायटियों में इसका प्रयोग खुलकर होना तथा जन-साधारण की खातिरदारी के लिए होना यह सब भयावह है। वर्तमान परिस्थितियों में इसे रोक सकना असंभव तो नहीं परन्तु कठिन अवश्य है। इसके द्वारा हमारा कितना अधोपतन हुआ है। अनुमान लगावें ?

प्रकृति के अनुसार मानव जीवन में इसकी आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए। विशेषतः जिन्हें आध्यात्म से थोड़ा भी सम्बन्ध अथवा रुचि हो उनके लिए तो यह सर्वथा त्याज्य ही है।

सामान्य जीवन में भी इसकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। साधारण

व्यवस्थित जीवन में स्वास्थ्य सम्बन्धी हमारी सभी आवश्यक्ताएँ भोजन, व्यायाम विश्राम, आदि से पूरी हो जानी चाहिए। जो कि हो सकती ही नहीं, होती हैं और हो रही हैं। हमें इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

औषधि की भी हमें सामान्यतः आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। परन्तु किन्हीं कारणों से हो, तो केवल उतनी ही मात्रा तक सीमित रहे जितना नितान्त आवश्यक हो फिर अपना साधारण जीवन सामान्य रहन सहन पर निर्भर रहना चाहिए।

(ii) तम्बाकू - तम्बाकू का सेवन, खाना-पीना दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। समाज में कुछ ऐसा वातावरण बना है कि इन दोनों कुप्रथाओं का ही प्रचार बढ़ता हुआ दिखाई देता है। तम्बाकू में नशा होता है। खाने वालों के दांत तो शीघ्र ही खराब हो जाते तथा गिर जाते हैं। पेट की पाचन क्रिया भी बिगड़ जाती है। तम्बाकू खाने वाले कुछ तो सर्वदा ही पान के साथ अथवा वैसे ही तम्बाकू हर समय मुंह में रखते है यह बहुत ही बुरा है। पाचन क्रिया बिगड़ने से स्वास्थ्य में ह्रास होना आवश्यक ही नहीं- अनिवार्य है। परन्तु ऐसा देखा जाता है कि इसका स्वभाव पड़ जाने पर इससे मुक्ति पाना जीवन भर संभव नहीं होता। स्वास्थ्य बिगड़ने से रोगों का आक्रमण सरल हो जाता हैं और तम्बाकू सेवन अकाल मृत्यु का एक कारण बन जाता है।

तम्बाकू पीना (स्मोकिंग) भी उतना ही बुरा है। तम्बाकू का धुआं फेफड़ों में जाता है और सारे ही श्वास-प्रश्वास के यन्त्रों को गंदा कर देता है। यदि पास में कोई तम्बाकू न पीने वाले भी बैठे हो तो उन्हें इसके धुएं से विशेष कष्ट होता है। इसकी भी आदत ऐसी ही बन जाती है कि फिर जीवन भर छूटती नहीं और मानव को अकारण ही अकाल मृत्यु का ग्रास होना पड़ता है।

हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता होती है कि वातानुकूलित वाहनों, रेल, वायुयान आदि में धूम्रपान वर्जित है। वातानुकूलित कोचों में तो धूमपान करने वाले पीछे खुले में जाकर धूम्रपान कर लेते हैं तथा मोटर कोचों को भी स्थान-स्थान पर रुकना पड़ता है। वहाँ यह सब अपनी पिपासा शान्त कर लेते हैं। परन्तु वायुयान

की यात्रा में यह सुविधा उपलब्ध नहीं होती है। वहां ऐसे लोगों का, जिन्हें आदत होती है, दम घुटते भी देखा गया है। परन्तु फिर भी वे अपना स्वभाव बदलने को तैयार नहीं होते और इस कुप्रथा से चिपटे ही रहना चाहते हैं।

धूम्रपान छोड़ना कोई कठिन काम नहीं है। हमारे एक बड़े ऑफिसर जो सिगार के चेन स्मोकर थे उन्हें साठ वर्ष की आयु में पीठ पर कैंसर रोग हो गया। ऑपरेशन से ठीक तो हो गये परन्तु सिगार पीना छूट गया। हमारे ही एक परिवार के वृद्धजन (70 वर्ष) ने एक प्रातः अपना पचास वर्ष की धूम्रपान का स्वभाव एकदम छोड़ दिया और फिर 15 वर्ष जिये परन्तु धूम्रपान नहीं किया। ऐसे अनेक उदाहरण आपको मिलेंगे।

तम्बाकू खाना और पीना दोनों ही व्यसन नहीं दुर्व्यसन है। इन्हें शिघ्रातिशीघ्र त्याग देना ही श्रेष्ठ है। इसका सेवन करने वालों का सामान्य जीवन कहाँ रहा ? हम ऐसे कुव्यसन के दास बन गये जिसके क्षणिक आनन्द के लिए अपना सर्वनाश करने का भी दांव लगा दिया।

भारतवर्ष के कई राज्यों में शराब का उत्पादन कर (Excise Duty) द्वारा ही प्रचार बन्द करने का अभियान तथा संसार में केन्सर आदि रोगों के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिये तम्बाकू का रिवाज कम ही नहीं करना वरन एकदम बन्द करने का अभियान भी चला है। राज्यों में एक बहुत बड़ी आय के स्रोत की अवहेलना करते हुए भी मानव सेवा के अभिप्राय से इसे लागू कर रहे हैं। यह शुभ है।

(iii) अन्य - पुराने जमाने में कुछ देशों में (चीन आदि में) अफीम खाने का रिवाज था अब यह उठ गया है। अफीम को तम्बाकू की तरह पीना, जिसे चण्डू कहते हैं, वह अफीम खाने से भी अधिक हानिकारक और बुरा है।

इस प्रकार अन्य भी बहुत प्रकार के नशे हैं जिसमें से आजकल हिरोइन का रिवाज बहुत बढ़ा हैं। कुछ देश इसे बनाते हैं और चोरी से बेचते हैं और बहुत-बहुत लाभ कमाते हैं। इसका विरोध भी शिक्षित वर्ग की ओर से सभी देशों में होता रहा है परन्तु बनाने बेचने वाले देश तथा इसका प्रयोग करने वाले माने तभी

बुराई दूर हो सकती है। बनाने-बेचने वालों को नशे की वस्तुएँ बंद करने से आर्थिक हानि होती है अतः वे ऐसा नहीं मानेंगे। इसके लिए उन्हें विवश करना पड़ेगा। हम चाहते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वह समय शीघ्र आए।

भाग 2 - मानसिक स्वास्थ्य

1. मन की परिभाषा

शारीरिक स्वास्थ्य के विषय में हमारे देश में तथा संसार के अन्य देशों में भी अनेक पत्र-पत्रिका, पुस्तकें आदि प्रकाशित हो चुकी हैं और हो रही हैं। यह सत्य है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य से मन के स्वास्थ्य का इतना सम्बन्ध नहीं है जितना कि साधारणतया समझा जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य क्या है, थोड़ा इस पर विचार करें तो हम पायेंगे कि विचारों का आना, उनका मनन करना तथा निर्णय लेना ये सारे ही कार्य मन के हैं जो तुरत-फुरत होते हैं। हमारे शास्त्रों में इस मन को चार भागों में बांटा गया है, यथा-

(i) मन - जिसमें विचारों का अवतरण होता है।

(ii) चित्त - यह रिकार्ड कीपर का कार्य करता है। जब मन में कोई विचार आता है तो मन इसे चित्त को भेज देता है कि इस रिकार्ड में पहले कोई ऐसा विचार आया हुआ तथा निर्णय लिया गया है तो वह क्या है ? यदि है तो उसके आधार पर और यदि नहीं है तो नये सिरे से इस पर निर्णय लेना होता है।

(iii) बुद्धि - इसके पश्चात बुद्धि का नम्बर आता है। चित्त में से निकल कर विचार बुद्धि के पास जाता है। बुद्धि का कार्य यह है कि जो आजकल यथार्थ में हमारे प्रधान मन्त्री करते हैं अर्थात् निर्णय लेना।

(iv) अहंकार - इस लिये हुए निर्णय को बुद्धि द्वारा अहंकार के सम्मुख रखा जाता है जिसका कार्य आजकल के राष्ट्रपति द्वारा किये गये कार्य के समान होता है और जो बुद्धि के द्वारा लिये गये निर्णयों को सामान्यतया बिना कुछ बदले हुए स्वीकृति प्रदान कर देता है। कभी अपने अधिकार का प्रयोग करके कुछ समय

के लिए निर्णय रोक भी लेता है तथा पुनर्विचार को लौटा देता है।

इन चारों भागों का आदान-प्रदान इतना तुरत फुरत होता है कि इसमें समय नहीं लगता। ऐसा लगता है जैसे विचार आया और तुरन्त ही निर्णय ले लिया और उसके अनुसार कार्य कर दिया गया।

अपनी सामान्य बुद्धि के अनुसार तो ये सारे निर्णय सही लिये जाते हैं परन्तु कभी-कभी इनमें गलती भी हो जाती है उसे आगे चलकर ठीक किया जाता है। पर कभी-कभी कोई निर्णय ऐसा भी हो जाता है जो ठीक नहीं किया जा सकता तथा इसमें जो हानि होनी होती है वह हो ही जाती है।

हमारे गणतन्त्र (डेमोक्रेसी) की परम्परा के अनुसार ही सारा कार्य संचालन होता रहता है। इस प्रकार कार्य करने में मन के चारों भाग इस प्रकार सहयोग करते हैं कि इनमें क्या कुछ कब होता है इसका अनुमान लगाना कठिन है और प्रायः इसकी आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती।

2. मन का कार्य

मन का क्या कार्यक्रम रहता है और इसमें विचारों का किस प्रकार विश्लेषण होता है यह सब क्रिया ऊपर लिखे अनुसार सदा होती रहती है।

हम इस संसार में रहते हैं - सारे सांसारिक कार्य हम करते रहते हैं। हमारा मन इसी में सदा सर्वदा लगा रहता है। रात दिन के 24 घण्टों में मन को विश्राम नहीं मिलता। जाग्रत में जो कार्य होते हैं वे हम जानते हैं और समझते हैं। इसी प्रकार शरीर के सोने पर भी मन नहीं सोता और विचारों के आदान-प्रदान का कार्य स्वप्न रूप में होता रहता है। साधारणतः स्वप्न में वे ही विचार रूप धारण करते हैं जो हमें कभी थोड़े समय अथवा अधिक समय पहले आये हों। हम सोते हुए भी इन विचारों में खोये हुए रहते हैं तथा मन कार्य करता रहता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इस मन को विश्राम करने का अवसर ही नहीं मिलता।

आराम तभी मिले जब विचार आना बन्द हो, जो बंद होते नहीं। अतः मन

को सदा सर्वदा कार्य करते रहना पड़ता है। हमारे सोचने का विषय है कि क्या मन को आराम करने की आवश्यकता नहीं होती ? अवश्य होती है। कभी-कभी हम शरीर की भांति अपने मन को भी थका हुआ पाते हैं और उस समय सारे कार्य बन्द करके थोड़ा चुपचाप बैठ जाते हैं, विचार शून्य होने का प्रयत्न करते हैं परन्तु मन उस समय भी कुछ न कुछ करता ही रहता है।

कभी-कभी हमें गहरी निद्रा भी आती है जिसमें हमारी स्वप्न देखने की क्रिया भी बन्द हो जाती है। ऐसा कभी-कभी होता है और थोड़े समय के लिये ही होता है। ऐसी निद्रा से उठने पर हम मानसिक रूप से अपने आप को अधिक स्वस्थ पाते हैं। प्रत्येक मानव को ऐसी निद्रा 24 घण्टे में थोड़ी देर लगभग 15 मिनट तक आती है। यदि वह निद्रा न आवे तो वह मानव स्वस्थ नहीं रह पाता तथा मानसिक रोग से पीड़ित हो जाता है। जिन्हें इस प्रकार की निद्रा ही नहीं आती जिसमें मन को विश्राम मिले वे मानसिक रोग से घिर जाते हैं। निद्रा नाश (इन्सोमेनिया) इसी रोग को कहते हैं।

विचार कीजिये कि मन की विचारशून्यता कैसे प्राप्त हो ? मन को निद्रा कैसे आवे जिससे इसे आराम मिले। मनोवैज्ञानिकों ने इसमें भी पर्याप्त विश्लेषण और अनुसंधान किया है और वे विचार-शून्य होने की विधियाँ भी बतलाते हैं। इन्हें करना थोड़ा कठिन है। पहले तो ये क्रियायें सर्वसाधारण को ज्ञात ही नहीं है। ज्ञात होने पर भी इन्हें नियमित रूप से कर लेना और करते रहना कठिन है। इन सबके विषय में आपको पर्याप्त साहित्य, जो कि अधिकतर पाश्चात्य देशों से आया हुआ है, मिलेगा। हमारे आधुनिक शिक्षित वर्ग इसे बड़े आदर से देखते हैं और इसकी प्रशंसा भी करते देखे गये हैं परन्तु इनके द्वारा मन की एकाग्रता को प्राप्त किये हुए कोई एक व्यक्ति भी देखने में नहीं आया। यही कारण है कि अमेरिका और यूरोप के लोग अपने आपको सभ्यता का प्रतीक मानते हुए भी मानसिक शान्ति की खोज में भारत में आते देखे गये हैं।

3. अष्टांग योग

महर्षि पातंजलि के अष्टांग योग में जो आठ अंग योग के बतलाये गये हैं

और यहाँ नीचे लिखे गये हैं, वे ऐसे हैं जिनके द्वारा मन की एकाग्रता की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। इन सबका पालन कठिन अवश्य है परन्तु यदि ये सब कर सकें तो मन की एकाग्रता, ध्यान तथा आगे की अवस्था समाधि को पहुंचा जा सकता है।

(i) यम - इनमें पहले यम के अन्तर्गत पांच प्रत्यंग हैं- यथा-
1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय, 4. ब्रह्मचर्य तथा 5. अपरिग्रह

(ii) नियम - इसी प्रकार नियम भी पांच है यथा -
1. शौच, 2. सन्तोष, 3. तप, 4. स्वाध्याय, 5. ईश्वर प्रणिधान।

यदि हम यम के पांचों प्रत्यांगों को साधने का विचार करें तो इस युग मैं इन पांचों में एकएक का भी पालन बहुत बड़ा तथा कठिन कार्य हैं। इसी प्रकार पांचों नियमों का पालन भी अपने आप में एक बड़ी तपस्या है। फिर भी ये दोनों यम, नियम तथा इनके प्रत्यांगों का पालन हमें स्वयं ही करना है, किसी से सीखने नहीं जाना हम यह सब समझते हैं। यदि इन सबका पालन हो सके तो पालन कर्ता संसार के एक उच्च आदर्श को अवश्य प्राप्त कर सकता है।

(iii) आसन - आसनों के प्रकार इतने कठिन हैं कि जिन्हें बिना किसी अनुभवी व्यक्ति (गुरु) के बतलाये और कराये केवल लिखित वर्णनों के आधार पर कर लेना भयावह है। इसमें चूक हो जाने पर स्वास्थ्य हानि का भय सदा ही रहता है। कठिन परिस्थितियों मैं मृत्यु का भय भी हो सकता है।

(iv) प्राणायाम - इसी तरह प्राणायाम के भी बहुत प्रकार हैं। इसमें प्राण (अर्थात् श्वास) को निश्चित क्रिया द्वारा साधा जाता है जो एक कठिन साधन है। बिना अनुभवी गुरु द्वारा सीखे इसे भी करना भयावह है। इसमें गलती हो जाने पर सीधा प्राणों पर ही आक्रमण होता है।

(v) प्रत्याहार - विचार को पुनः केन्द्र पर लाना उसका फिर भाग जाना तथा पुनः-पुनः केन्द्र पर लाना - इस क्रिया को प्रत्याहार कहते हैं।

(vi) धारणा - विचार (ध्यान) को केन्द्र अथवा इष्ट पर जमाने को धारणा कहते हैं जो सरलता से किया जा सकता है। परन्तु विचार (ध्यान) का उस केन्द्र पर जमाए रखना कठिन होता है। चंचल मन केन्द्र को छोड़ कर अन्य स्थानों पर चला जाता है और धारणा पर ठहरता नहीं-यह मन का स्वभाव है।

(vii) ध्यान - शास्त्रकारों ने तेल की अविरल धारा की उपमा देकर 'ध्यान' का रूप समझाने का प्रयत्न किया है। प्रत्याहार द्वारा ध्यान का लौटा-लौटा कर लाते-लाते, ध्यान थोड़ा जमने लगता है - और इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके देर तक ध्यान को एक बिंदु पर केन्द्रित करने का अभ्यास बनता है।

(viii) समाधि - ध्यान की घनी अवस्था जिसमें अपनी चेतना भी ध्यान में खो जाती हैं - उसे समाधि कहते हैं।

इन आठों अंगों में समाधि की स्थिति प्राप्त करना - देखने में तो सरल लगता है परन्तु बहुत-बहुत कठिन है। फिर ध्यान समाधि के द्वारा आध्यात्म की ऊँची स्थितियों को प्राप्त करना, यह कार्य तो बिना अनुभवी गुरु की सहायता के कठिन ही नहीं हमारी जानकारी के अनुसार असंभव ही है।

4. संतों का अवतरण

भगवान बड़े दयालु हैं। इस युग में मानव की इस कठिनाई को देखकर उन्होंने सन्तों की एक विशेष श्रेणी को इस भूतल पर उतारा। उन्होंने यम नियम आसन प्राणायाम के कठोर साधनों को, जिनमें आयु का बड़ा भाग पूर्ण हो जाने पर भी पूरी सफलता प्राप्त नहीं हो पाती, पूर्ण रूप से आवश्यक नहीं माना। परन्तु इन्हें छोड़ा भी नहीं। सूक्ष्म रूप से इनका पालन कराते हुए सीधे प्रत्याहार तथा धारणा के द्वारा ध्यान की क्रिया करना तथा इसके आगे समाधि की स्थिति को प्राप्त करना - इसका अनुसंधान किया और सरल साधनों द्वारा ध्यान तथा समाधि की स्थिति को प्राप्त करने का मार्ग ढूंढ निकाला।

ध्यान मन के द्वारा होता है। मन से अधिक चंचल भगवान की सृष्टि में कोई

अन्य वस्तु का सृजन ही नहीं हुआ। ऐसे चंचलतम् मन को कैसे एकाग्र करके ध्यान की क्रिया करें - क्या यह कोई सरल कार्य है ? सन्तों ने इसे सरल बनाया। वे आपको सामने बिठला कर अपनी अर्जित शक्ति के द्वारा ध्यान करा कर समझा देते हैं कि ध्यान क्या होता है। जिसका वर्णन करने के लिए हमारे शब्द कोष में पर्याप्त शब्दावली नहीं है ; वह क्रिया द्वारा समझा दिया जाता है। फिर वे ही संत इसका अभ्यास करने में साधक को पग-पग पर सहायता देते तथा समाधि और इसके भी आगे की स्थितियों में पहुँचाते हैं। इस अभ्यास से साधक आवश्यक शक्ति का अर्जन करते हैं और उसका संचय तथा विकास करने लगते हैं।

समाधि की अवस्था से संतों का मार्ग में प्रवेश होता है, आगे बहुत-बहुत चलना है। सारा सूक्ष्म मण्डल पार करना होता है। जो गुरु भगवान की सहायता से सरलता से पार होता चला जाता हैं।

5. संत सद्गुरु

ध्यान को इस क्रिया को कराने और आगे के मण्डलों को सहायता करके पार कराने की सामर्थ्य तथा दक्षता रखने वालों को सन्तों की भाषा में सद्गुरु कहते हैं। यदि आपको सौभाग्य से सद्गुरु मिल जाये तो आपका अहोभाग्य है। उनको ऐसा पकड़िये कि फिर कभी भी छूटने न पावे। आपके इस लोक और परलोक के सारे ही कार्य सरल हो जायेंगे। गुरु शब्द का अर्थ है शिक्षक अर्थात शिक्षा देने वाला। विद्या पढ़ाने वाले, जीवन के साधारण कार्य सिखलाने वाले, माता-पिता आदि हम से बड़े सभी गुरु का कार्य करते हैं। हम सद्गुरु उन्हें कहते हैं जो हमें मन के एकाग्र करने व आत्मा के उत्थान की विद्या सिखलाते हैं। आत्मा की विद्या के लिए पहले तो मन को साधना पड़ता है जो अत्यंत कठिन है। मन चंचल होते हुए भी सद्गुरु द्वारा बतलाये तथा कराये गये साधनों के करने से नियंत्रित होता और आत्मा को ऊपर के सूक्ष्म मण्डलों में प्रवेश कराने और आगे चलाने में सहायक होता है परन्तु यह सब बिना सद्गुरु की सहायता के संभव नहीं है।

हम अपने ऊपर लिखे हुए शब्दों को आपके लिए दोहराते हैं। जो ध्यान की क्रिया करा कर ध्यान क्या होता है यह हमें समझा सके तथा जो इसे परिपक्व

करके आगे के मण्डलों को पार कराने में सक्षम हों, वे ही सद्गुरु हैं। इनकी परख कीजिये और बड़ा बोल बोलने वाले, विशेष वेशभूषा धारण करने वाले तथा वाचक ज्ञानियों से बचकर रहिये। जैसे ही उनकी क्षमता का पता लगे कि उनमें ध्यान कराने की सामर्थ्य नहीं है तुरन्त उन्हें छोड़कर अन्य की खोज कीजिये जो इस कार्य में समर्थ हो।

सद्गुरु की खोज में आपको समय लगता है तो इसकी अधिक चिन्ता करना आवश्यक नहीं है। बनावटी सद्गुरु आपका केवल समय ही नष्ट नहीं करेंगे अपितु आपको ऐसी स्थिति में भी पहुंचा सकते हैं जिससे सामान्य स्थिति को लौट आना कठिन तथा कभी-कभी असंभव हो सकता है। अत: इनसे बचना अत्यावश्यक है।

यह सारी मन की स्थिति, कार्यप्रणाली तथा इसकी सामर्थ्य आदि को समझ लेने के पश्चात आप यह अनुमान लगाने में सक्षम होंगे कि मन का स्वास्थ्य क्या है ? मन में जो विचार शक्ति है उसका सही दिशा में नियन्त्रण हर समय बनाये रखना तथा अनुचित दिशा में जाने ही न देना यही मन का स्वस्थ रहना है। सांसारिक प्रलोभनों से इसे बचाये रखना और सद्गुरु द्वारा बतलाये मार्ग पर ही चलते रहना, अनुचित दिशाओं में जाने से सदा मन को रोके रखना मन का स्वास्थ्य है। हमारा विश्वास है कि सद्गुरु की सहायता से ही मन की इस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है अन्यथा मन को इस प्रकार नियन्त्रित कर लेना संभव नहीं है।

बहुत-बहुत ऊंची स्थितियों तक चढ़ाई करने में मन की सहायता की आवश्यकता जीवात्मा को रहती है। मन में शक्ति है, क्षमता है जिसका विकास सद्गुरु के द्वारा किया जाता है। मन की सहायता बिना हमारी जीवात्मा का ऊंची चढ़ाई करना संभव नहीं है।

6. मन की सीमा

यह सब कुछ होते हुए भी आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि मन भी जीवात्मा को मन के मण्डल (जो सूक्ष्म मण्डल की पराकाष्ठा है) के अन्तिम चरणों

(मँडलों) तक ले जाकर आगे जाने में असमर्थ हो जाता है। कारण के मण्डलों में मन सूक्ष्म होने के कारण नहीं जा सकता। केवल आत्मा ही ऊपर जा सकती है। अतः यहां पहुंचकर मन को छोड़ना पड़ता है। इन चरणों (मंडलों) में गुरु भगवान की सहायता से ही सालोकता, सामीपता, सारूपता तथा सायुज्यता की स्थितियों को प्राप्त करते है। यही आत्मा की चरम सीमा है। इस स्थिति को केवल बिन्दु का सागर में मिलकर एक हो जाना इसी दृष्टान्त से समझा जा सकता है। इसका सविस्तार वर्णन आगे के अध्यायों में समझाने का प्रयत्न करेंगे। यह सब कारण के मण्डलों में आता है जहाँ मन की पहुंच नहीं है। अतः इसका वर्णन आगे तीसरे भाग में ही सरल भाषा में लिखने का प्रयास किया गया है।

"उल्टी ही राह चलते हैं दीवानगाने इश्क,
आँखों को बन्द करते हैं दीदार के लिए।"

ध्यान तथा समाधि की स्थितियों द्वारा ही सूक्ष्म की चढ़ाई होती है। ध्यान और समाधि दोनों ही स्थितियों में आँखें बन्द रहती हैं। इन आँखों से हम थोड़ा बारीक वस्तु को भी नहीं देख पाते। इसके लिये हमें सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता लेनी पड़ती है। सूक्ष्म मण्डल में ये आँखें काम नहीं करतीं। वहाँ ये बेकार हो जाती हैं। यहाँ सद्गुरु भगवान ही हमें दिव्य दृष्टि देते हैं जिसके द्वारा हम आगे बढ़ पाते हैं।

7. मन की शक्ति एकाग्रता आदि

मानसिक शक्ति के अन्तर्गत हम जो कुछ शरीर के अतिरिक्त मन के द्वारा काम करते हैं वह सब आता है। यों तो मन के बिना स्थूल शरीर से भी कार्य लेना संभव नहीं है परन्तु बहुत कार्य ऐसे भी हैं जिनमें स्थूल शरीर का बहुत थोड़ा या कभी-कभी नहीं के बराबर ही योगदान होता है - अधिकतर कार्य मानसिक ही रहता है।

जब हम पढ़ते अथवा लिखते हैं उस समय हमारा स्थूल भाग केवल सहायता मात्र करता है। असल कार्य हमारे मन के द्वारा होता है। किसी विषय पर विचार करते समय हम अपने शरीर को स्थिर रखते हैं और केवल मस्तिष्क ही के

द्वारा कार्य करते रहते हैं। खेल तमाशा देखते हैं जिन में कानों के द्वारा हम बोली सुनते और नेत्रों द्वारा दृश्यों को देखते हैं और इन दोनों इन्द्रियों के सामंजस्य से पूरे विवरण को मन में उतारते हैं। यह सब मानसिक कार्य के अन्तर्गत आता है।

मन की चंचलता के विषय में हम सभी मानते हैं कि इससे अधिक चंचल कोई भी वस्तु भगवान की सृष्टि में रची ही नहीं गई। हम सभी इसे एकाग्र करना भी जानते हैं। यदि हम कोई ऐसी पुस्तक पढ़ने लगें कि जिसमें हमारी रुचि हो अथवा कोई ऐसा खेल तमाशा, टीवी आदि देखने लगें तो हम पायेंगे कि हमारा मन सभी ओर से निकल कर उस कार्य में हमारी सहायता करता है। यहाँ तक कि कोई शारीरिक कष्ट/दर्द आदि भी हो रहा हो तो उसे कुछ समय के लिए हम भूल जाते हैं। मन उस कष्ट की ओर से हट कर उस कार्य में लग जाता है और थोड़े समय के लिये कष्टों को भूल जाता है। यह मन की एकाग्रता ही है जिसके विषय में हमारी जानकारी है और इस विषय में कुछ अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं लगती।

हमें मन एकाग्र करना आता है और इसे हम करते भी हैं। फिर मन से शिकायत क्यों ? इस पर विचार विस्तार से करना आवश्यक लगता है। हमारा मन उन विषयों में तो लगता है जिनको हम सदा से करते आये हैं और हमारी रुचि उनको करने में हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विषय जो हमारे लिये नये हैं तथा जिसमें हमारी रुचि पहले से नहीं है उनमें मन को कोई आकर्षण नहीं मिलता। आध्यात्मिक विषय इसमें आता है। मन को इसमें कोई आकर्षण नहीं लगता, नहीं मिलता। यही कठिनाई इसको इस ओर एकाग्र करने में हैं। मन की चंचलता को वश में करने के लिए आजकल बहुत से ऐसे गुरु इस समय संसार में और भारत में भी मिलने लगे हैं जो आपको कुछ मानसिक अभ्यासों द्वारा इस ओर थोड़ी प्रगति करने में सहायक होते हैं। इनके द्वारा हमारा शिक्षित समाज इस ओर आकर्षित हुआ है परन्तु ऐसे मानव अधिकतर एकाग्रता की शक्ति का उपयोग सांसारिक कार्यों में ही लेते देखे गये हैं। साधारणतः मानव इसी अभिप्राय से उनके शिक्षकों के पास जाते, अभ्यास सीखते, करते और इससे लाभान्वित भी होते देखे गये हैं। परन्तु इन सबका अभिप्राय केवल सांसारिक जीवन में सफलता प्राप्त करना ही होता है। ये सब ईश्वर को पाने अथवा अपनी आत्मा को स्थायी शान्ति की ओर ले जाने की आवश्यकता

ही नहीं समझते। यह कैसी विडम्बना है ?

कोई-कोई शिक्षक तो अपने इस प्रकार की शिक्षा के लिए ही कुछ फीस भी लेते हैं और आपको अभ्यास बता कर कभी-कभी करा कर भी, आपको प्रगति के मार्ग पर लगा भी देते हैं। इन सबसे लाभ जो सांसारिक होते हैं उन्हें हम संसारी बड़ी उपलब्धि मान लेते हैं और सांसारिक दृष्टिकोण से ऐसा है भी। परन्तु भगवान के नाम से अथवा उनको पाने के उद्देश्य से इसका कोई संबन्ध नहीं हैं।

8. सद्गुरु की खोज

इसके लिए तो यदि आपको रुचि है तो आपको ऐसे सद्गुरु की आवश्यकता होगी जो आपको आगे के सूक्ष्म लोकों को पार कराते हुए साक्षात्कार तक और फिर उसके ऊपर की स्थितियों तक ले जाने में समर्थ हो। इसे समझने का प्रयत्न कीजिये। यह कार्य केवल सद्गुरु के द्वारा ही संभव है बाकी सब धोखा मात्र है।

इस मानसिक शक्ति के वर्णन से आपको यह समझने में कठिनाई न होगी कि, मन अपनी जानी बूझी तथा जिनमें मन को थोड़ा बहुत बहलाव का साधन मिलता है वहाँ सरलता से लग जाता है।

आध्यात्म के मार्ग में इन सब सांसारिक कार्यों से मन को हटा कर हम परम शक्तिमान प्रभु तथा आध्यात्म मार्ग की ओर जाने में थोड़ा हिचकिचाते हैं। स्पष्ट है कि मन को अपने जाने-बूझे परिचित तथा वांछित साधन, जिनमें उसे अच्छा लगता है, न ले जाकर आप एक ऐसे मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करते हैं जिस मार्ग में न तो कोई रस मिलता है, न ही कुछ समझ में आता है। धैर्य के साथ उस मार्ग में थोड़ा अभ्यास करने पर वह मार्ग कुछ समझ में आता है। फिर प्रयत्न करते रहने पर धीरे-धीरे मन इसकी ओर आकर्षित होने लगता है। फिर भी सांसारिक कार्यों में जो जाना-बूझा सुख, थोड़ा और थोड़े समय का ही सही, मन को मिलना तो निश्चित ही है, इससे आप उसे वंचित करते हैं। अतः इस मार्ग को छोड़कर मन भाग जाना चाहता है।

आरम्भ से सभी अभ्यासियों को इन विचारों का सामना करना पड़ता है परन्तु जब वे अपने काम (अभ्यास) में लगे रहते हैं और उधर भी कुछ रस मिलने लगता है तो धीरे-धीरे उसमें लगे रहने का स्वभाव बन जाता है। विशेषतः ऐसे समय में जब मानव मस्तिष्क को सांसारिक चिन्ताओं ने घेर रखा हो और उसके प्रयत्न करने पर भी वह उन्हें सुलझा नहीं पाता हो, तब उसका झुकाव इधर होने लगता है। इधर लग जाने में उसे थोड़ी शान्ति तो मिलती ही है।

हमारे भाग्य के सुख-दुख जो हमारे कर्मों का फल ही होते हैं, प्रकृति के नियमानुसार उनको भोगना तो पड़ता ही है। यदि हम उसे भोगने में थोड़ी भी सुविधा ला पाते हैं तो वह सहारा बहुत स्वागत योग्य होता है। थोड़ा बहुत कष्ट तो यदि हम काम में लगें रहें तो भूल भी जाते हैं। खेल तमाशे में हम अपना कष्ट भी उतनी देर भूले रहते हैं। इसी प्रकार हमें कष्टों को भूले रहने का स्वभाव बनाने के लिए ऐसा काम जो हमारे लिये लाभदायी भी हो और सरल भी हो, ऐसे मानसिक साधन आपको आध्यात्म में खूब-खूब मिलेंगे और सांसारिक साधारण मानव के लिए वे एक आकर्षण हो सकते हैं। इस पर विचार कीजिये।

हमें कष्ट होएं ही नहीं अथवा होएं तो हमें मालूम न पड़े या कम मालूम पड़े ऐसी स्थिति पा लेना असम्भव तो नहीं, कठिन अवश्य है। सन्तों के मानसिक अभ्यासों, साधनों से यह संभव है। यह एक ऐसी उपलब्धि है जिसकी कामना प्रत्येक मानव की होगी। हमारी यह आवश्यकता है जिसे पा लेना भी अधिक कठिन नहीं है। इस पर भी विचार करें। आपको यदि यह सब मिल जाये तो क्या यह आपकी अद्भुत उपलब्धि नहीं होगी ?

इन सबके अतिरिक्त सन्तों के साधनों द्वारा उस सर्वशक्तिमान के निकटतम पहुंच सकते हैं जहाँ सुख शान्ति का भण्डार है। इससे बड़ी उपलब्धि आपको और क्या चाहिए।

9. मानसिक तनाव

आजकल, साधारणतः सभी सम्पन्न व्यक्तियों में एक मानसिक रोग पाया

जाता है, जिसे हम 'मानसिक तनाव' (Tension) कह सकते हैं। हमारे मित्रों को इसे समझने में देर न लगेगी क्योंकि संभवतः वे स्वयं भी किसी न किसी रूप में इस तनाव से मुक्त नहीं हैं। आइये थोड़ा इस पर भी विचार करें।

प्रगति के इस युग में हमारी शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यक्तायें इस शीघ्रता से बढ़ रही हैं कि हमें इनकी पूर्ति के विचार में व्यस्त रहना पड़ता है। हमें यह भी चाहिये, वह भी चाहिये - जो है उससे सन्तुष्ट न होकर न जाने क्या-क्या प्राप्त करने की इच्छायें व कामनाएँ बनी ही नहीं रहती वरन् बढ़ती जाती हैं। कुछ आवश्यक्ताओं की पूर्ति होती रहती है, परन्तु नयी-नयी इच्छायें, आवश्यक्ताएँ जन्म भी लेती रहती हैं - यह क्रम इस प्रकार चलता रहता है कि हम अपनी इच्छाओं-आवश्यक्ताओं की संख्या नित्य प्रति बढ़ती हुई ही पाते हैं। जैसे-जैसे इच्छाओं की पूर्ति होती जाती है वैसे-वैसे ही नई-नई इच्छाएँ सम्मुख आती जाती हैं।

अब से लगभग 70 वर्ष पहले कभी तीसरे दशक के हमारे विद्यार्थी जीवन में हमारे कॉलेज के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर साहब ने सभ्यता की परिभाषा (Definition of civilization) यह बतलाई थी कि जिन मानवों की आवश्यक्ताएँ अधिक होती हैं वे अधिक सभ्य माने जाते हैं। यदि इस परिभाषा के अनुसार विचार करें तो प्राचीन भारत के हमारे पूर्वज तपस्वी ऋषि-मुनियों को, जिनको हम अपना परम पूज्य अग्रज मानते हैं, वे नितान्त असभ्य की श्रेणी में आते हैं। जिन्हें हम अब भी भारतीय सभ्यता की नींव, ज्ञान, विद्या तथा जीवन का आदर्श मानते हैं और जो हमारे वेद-पुराणादि के रचयिता रहे हैं जिसके रचे साहित्य के समकक्ष संसार के किसी भी देश में रचा साहित्य तुच्छ लगता है - उन अत्यन्त विद्वान गुणवान महापुरुषों को असभ्य मानवों की श्रेणी में गिना जाना कहाँ तक उचित है विचार कीजिये। बचपन से ही हमें ऐसी शिक्षा मिलना आरम्भ हो जाती है और ऐसी धारणाओं को हमें मान्यता देने के लिये विवश किया जाता है। कैसी विडम्बना है ? तपस्या के द्वारा हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने अति गहन परिस्थितियों में रहते हुए तपस्या की और प्रकृति के रहस्यों की खोज करके पता लगाया और उनके रहस्यों को सर्वसाधारण के लिये उजागर किया-उनकी विद्या तथा जानकारी की क्या सीमा

(Limit) हो सकती है ? क्या यह हमारे अनुमान से बाहर की बात नहीं है ? उन्हें असभ्य कहना (मेरी धृष्टता के लिये पाठक मुझे क्षमा करें) मैं तो यूँ कहूँगा कि वे हमें बुरे-बुरे अपशब्द (गालियां) सुना रहे हैं।

मानव जीवन की शारीरिक आवश्यक्ताओं में भोजन, वस्त्र तथा आवास - ये ही तीन बिन्दु प्राथमिक माने जाते हैं। हमारे पूर्वजों (ऋषि-मुनियों) को ऐसी जड़ी-बूटियाँ ज्ञात थीं - जिनके सेवन से कई-कई दिन तक भूख-प्यास ही नहीं लगती थी। इनके सेवन से उन्हें मलमूत्र त्यागादि के लिये समय, श्रम की भी आवश्यक्ता नहीं रहती थी तथा शरीर में शक्ति सामर्थ्य बनी रहती थी और वे अपने शोध कार्य में ही सारा (24 घंटों का) समय लगा देते थे। भोजन की सूक्ष्मता से निद्रा विश्रामादि की भी आवश्यकता कम हो जाती थी और अधिक समय कार्य के लिये बच जाता था। अमूल्य मानव जीवन का अमूल्य भाग (समय) वे इस अनुसन्धान कार्य में लगा देते थे।

शीतादि ऋतु से रक्षा के लिये वे नग्न रहकर अपने शरीर को ऐसा कठोर, सहनशील बना लेते थे कि न सर्दी सताए न गर्मी, न धूप न वर्षा। वस्त्र केवल नाम के लिये (एक लंगोटी मात्र) पहनते और शरीर को नग्न रखते - गरम ठंडी सब हवा सहन कर लेते, उन्हें घर (मकान) की आवश्यकता ही न थी। यौगिक क्रियाओं तथा तप के द्वारा मानसिक उत्थान होता और फिर आध्यात्मिक। सृष्टि तथा सृष्टिकर्ता के सारे गुण-रहस्य उनके सामने खुलते चले जाते थे। ऐसा उनका शोधकार्य था। ऐसे हमारे पूर्वज महापुरुषों को जो असभ्य कहें उसकी उल्टी-बुद्धि को हम क्या कहें ?

इस युग में हमारी नित्य प्रति की आवश्यक्तायें-इच्छायें इस प्रकार बढ़ती रहने के कारण हमारे साधारण जीवनक्रम में न्यूनता की भावना हर समय बनी रहना, हम में एक ऐसा असन्तुलन बनाये रखती हैं कि जिससे छुटकारा पाना हमें बहुत कठिन लगता है - फिर भी अपना प्रयत्न करते ही रहते हैं - और थोड़ी बहुत सफलता इसमें मिलती भी रहती है।

हमारी अपूर्ण इच्छायें आवश्यक्तायें हमें यही विचार करते रहने पर विवश

करती रहती हैं कि इनकी पूर्ति कैसे हो ? मानसिक खिंचाव या तनाव यही है। क्या इसका कोई उपाय हो सकता है ?

यह कैसे हो कि हमारी इच्छायें आवश्यक्तायें न बढ़ें ? नई-नई पैदा न हों ? हम सामाजिक प्राणी हैं - समाज में रहते और देखते हैं कि हमारे आसपास सम्पन्न व्यक्ति भी रहते हैं जिसके पास हमारी तुलना में अधिक साधन हैं और उन इच्छाओं आवश्यक्ताओं की पूर्ति कर चुके हैं - जिनके लिये हम प्रयत्न कर रहे हैं। वे भी कोई असाधारण योग्यता वाले तो नहीं है - फिर हम भी उनके समान सम्पन्न क्यों नहीं हो सकते ? क्यों नहीं हो पाते ? हम प्रयत्न भी करते है - कभी सफल कभी असफल होते हैं। असफल होने पर एक प्रकार की खीज - अप्रसन्नता होना स्वाभाविक है। यही असन्तुलन तनाव का कारण है।

इस मानसिक तनाव से बचना संभव तो है पर कठिन भी है। एक पुरानी कहावत है-

रामभरोसे बैठ के सबका मुजरा लेय,
जैसी जाकी चाकरी तैसा ताको देय।

हम किसी भी धर्म में आस्था रखते हों यह अवश्य मानते हैं कि सबको देने वाला वही भगवान है। यदि हम सामान्य जीवन में भी अपनी इस मान्यता का पालन कर सकें तो हमें किसी प्रकार की खीज-खिसियाहट-तनाव आदि ही नहीं होनी चाहिये। हम अपनी योग्यताओं का स्वयं ही आँकलन करते हैं और अपने को औरों से कम नहीं आँकते। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि किसी विशेष कार्य को हमारे सन्मुख ही कुछ व्यक्ति कर लेते हैं जिसे हम नहीं कर सकते। हम में उसके अनुसार शक्ति योग्यता नहीं है फिर भी हम सम्पन्नता के लिये अपने आपको सर्वथा सक्षम मानते हैं और असमानता के कारणों की अनदेखी कर जाते हैं।

हमारी योग्यता तथा पात्रता का आँकलन करने वाला कोई और है - वही हमारी योग्यता पात्रता के अनुसार देता है। हम इसका आँकलन स्वयँ करते हैं और अशुद्ध करते हैं। ईमानदारी से व पक्षपात-रहित होकर नहीं करते। सभी निर्णय

अपने पक्ष में लेना चाहते हैं। अपनी योग्यता अयोग्यता का विचार नहीं करते। यदि ऐसा करने लगें तो हमें किसी भी प्रकार के भाव अभाव का दुख होना ही नहीं चाहिये। परन्तु अपने आप पर इतना कन्ट्रोल रखना हमें उचित नहीं लगता। हम स्वार्थी हैं और स्वार्थ के कारण जानते हुए भी पक्षपातयुक्त गलत निर्णय लेते हैं।

इस सब पर विचार करके यदि हम अपने स्वभाव में थोड़ा बदलाव ले आयें तो हमारी असन्तुलन की अवस्था बदल सकती है।

गज धन रथ धन बाजि धन और रतन धन खान,
जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान।

इस संतोष धन को अपनाइये। आप धनी हो जायेंगे। संतोषी सदा सुखी - आप स्वयं ही हो जायेंगे। भगवान के निर्णय पर विश्वास कीजिये और उसकी कृपाओं-दयाओं का धन्यवाद कीजिये।

ऊपर देखने से संतोष-सुख नहीं मिलता। ऊपर देखकर चलने वाला ठोकर खाता और गिरता है। नीचे देखिये। आप ठोकर खाने और गिरने से बचे रहेंगे। संसार में और हमारे आसपास ही हम से कम सम्पन्न व्यक्ति भी बहुत दिखेंगे। हम से अधिक दुखी भी बहुतेरे मिलेंगे। भगवान का धन्यवाद कीजिये कि उन सबसे आप अधिक सम्पन्न हैं अधिक सुखी हैं। तनाव जैसी तुच्छ-निकृष्ट भावना आपके पास फटक भी नहीं सकती।

10. साठ (60) वर्ष के आयु उपरान्त

यों तो मानव जीवन में-मनुष्य को आरम्भ से ही अपने प्रत्येक कार्य में सन्तुलन बनाये रखना - विशेषकर अपने भोजन में - आवश्यक है - क्योंकि उसके स्वस्थ और समर्थ बने रहने के लिये - ऐसा करना आवश्यक है - परन्तु आयु के साठ (60) वर्ष हो जाने पर - इस सन्तुलन की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यक्ता है। इस आयु में शरीर के सभी भागों में शक्ति संग्रह करते रहने की क्षमता में कमी होना आरम्भ हो जाता है। साधारणतः मानव उतनी शक्ति सामर्थ्य से अपना नियमित कार्य उतना अच्छा नहीं कर पाता है जैसा कि इसके पहले के वर्षों में

करता रहा है। अतः उसे अपने जीवनोपार्जन के कार्यों में थोड़ी-थोड़ी कमी करना - और अपने अनुजों को बच्चों को, परिवार के अन्य स्वजनों को धीरे-धीरे अपना कार्यभार सौंप देना चाहिये।

राज्य सेवा में भी इस आयु पर - अपने कर्मचारियों को सेवानिवृत्त (Retire) करने का नियम इसी आधार पर बना है। इस आयु में उन्हें सेवानिवृत्त करके उनके वेतन का एक भाग - निर्वाह के लिये जीवन भर देते रहने का भी प्रावधान है - जिसे पेन्शन (Pension) कहते हैं।

आरम्भ से ही जो अपने जीवन को नियमित करके - हर प्रकार की अति से अपने आप को सुरक्षित रखकर - साधारण जीवन व्यतीत करते रहते हैं - उनकी क्षमता में एकाएक कमी नहीं आती। फिर भी आयु अधिक हो जाने पर धीरे-धीरे शरीर के अवयवों में दुर्बलता, शिथिलता आदि को आने से अधिक समय तक रोका नहीं जा सकता।

साठ वर्ष की आयु तक स्वस्थ तथा कार्य कुशल बना रहना एक उपलब्धि है - जिसका मूल कारण - नियमित जीवन - संतुलित आहार - हर प्रकार की अति से बचे रहना ही होता है। ऐसे मानव अपनी शेष आयु में भी इसी प्रकार का संतुलित जीवन क्रम के आधार पर स्वस्थ और सक्षम बने रहते हैं। परन्तु फिर भी हम आपको साठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर अपनी रुचि संसार के सामान्य कर्मों से धीरे-धीरे कम करके अपने आपको आध्यात्मिक जीवन की ओर ले जाने का ही परामर्श देते हैं।

यों तो जीवन के सामान्य क्रम में भी अन्य कर्मों के साथ-साथ हमारा आध्यात्मिक कार्य भी चलते रहना चाहिये परन्तु साठ वर्ष की आयु प्राप्त होने पर तो अपनी व्यस्तता अन्य कार्यों से कम करके आध्यात्म की ओर लगाना और धीरे-धीरे बढ़ाना तथा सांसारिक कार्यों से कम करते रहना चाहिये। और अंततः अपना हाथ सांसारिक कार्यों तथा उनके उत्तरदायित्व से खींच ही लेना चाहिये।

जैसे-जैसे परिवार के सदस्य उत्तरदायित्व संभालते जावें वैसे-वैसे ही

अपना हाथ इस ओर से खींचते रहना चाहिये । उन्हें परामर्श सहायता आवश्यक्तानुसार अवश्य देते रहना चाहिये। फिर वे जो भी कठिनाई अपने कार्य में बतलाएं अथवा आप समझ पावें उसमें आपको परामर्श सहायता देना आपका कर्तव्य है। आपको इस उत्तरदायित्व से कभी पीछे नहीं रहना चाहिये आपके जीवन के अनुभवों का लाभ आपके अनुजों को, बच्चों को लेने का अधिकार है और यह सब उनको समय-समय पर देते रहना आपका कर्तव्य भी है।

हम तो यह कहेंगे कि आध्यात्म मार्ग का अपना कार्यक्रम (Progress) आपको सोच समझकर अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही बनाना चाहिये। इसके लिये आपको बहुत कुछ तो अपने परिवार के बड़ों से - माता-पिता से - दिशा निर्देश मिल सकता है। फिर भी आपको इस मार्ग में बहुत कुछ सोच समझ कर अथवा उचित परामर्श लेकर अपना ध्येय निश्चित करना चाहिये। जीवन में जितनी जल्दी ऐसा कर सकें - अवश्य कर लेना चाहिये।

हमारे देखने में ऐसा भी आया है कि जीवन के इस आवश्यक अंग की ओर कुछ महानुभाव ध्यान ही नहीं देते, अथवा देते भी हैं तो बहुत कम या कहिये कि देखा-देखी। इसका कारण वह वातावरण है जिसमें उन्हें रहना पड़ा है। बच्चे अपने माता पिता को देखते हैं कि वे अपने सामान्य कार्य जिसके द्वारा उनका जीविका उपार्जन होता है - अथवा उन्हें लाभ मिलता है - उसके प्रयत्न में - प्रातः उठते ही लग जाते हैं - और शौच स्नानादि में भी जल्दी-जल्दी उपचार मात्र करके अपने कमाई के स्थान पर दौड़ जाते हैं।

कुछ को हमने देखा है कि स्नान के पश्चात् दस पांच मिनट भगवान के नाम के लिए निकालते भी हैं तो मन अपने दैनिक (कमाई के) काम में लगा रहता है और भगवान से भी उसी में समृद्धि आदि माँग लेते हैं। इससे अधिक क्या चाहिए वे स्वयं भी नहीं जानते और न ही भगवान से माँगते हैं।

उनको देखकर उनके बच्चे भी यही सीख लेते हैं और समझ लेते हैं कि जीवन में यही पर्याप्त है। इससे अधिक कुछ भी करना आवश्यक नहीं है।

सभ्य परिवारों में पुरानी पड़ी हुई ऐसी परम्परायें, विचारधारायें व कार्यशैली बदलनी होंगी। मानव जीवन इतना ही नहीं है कि खाओ, पियो, सन्तान पैदा करो, उन्हें पढ़ा-लिखा कर कमाने खाने योग्य बनाओ और अपने कर्तव्यों को पूर्ण हुआ मानो। यह तो पशु जीवन ही हुआ।

आइये थोड़ा इस पर आगे विचार करें।

11. लक्ष्य

भगवान की सृष्टि में असंख्य प्राणी नभचर-थलचर-जलचर आदि हैं-मानव भी इन्हीं में एक है। ये सब योनियाँ हैं। इस सब योनियों में केवल मानव योनि ही कर्म योनि (और साथ-साथ भोग योनि भी) है। और सारी योनियाँ केवल भोग योनियाँ हैं। कर्म फल प्राप्त करने का अधिकार केवल मानव योनि को ही है।

इस योनि में आकर जीवात्मा कर्म करता है और अपने द्वारा किये शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख दुख भोगता आगे भोगने के लिए अन्य योनियों में जाता है। फिर कभी हजारों वर्षों में मानव देह पाता है तो फिर कर्म करता और फल भोगता तथा अन्य योनियों में जाता है और सुख दुख भोगता है। यह एक ऐसा चक्र है जो कभी समाप्ति पर ही नहीं आता। इस प्रकार हम भी अनेकानेक योनियों में गये और कष्ट पाते रहे। एक योनि से मर कर दूसरी योनि में जाने में बहुत-बहुत कष्ट होता है। परन्तु भोगना ही पड़ता है। अन्य कष्टों के अतिरिक्त एक सौभाग्य से हमने मानव जन्म पाया है। अब हमें चाहिये कि ऐसे कर्म करें जिनसे इन भोग योनियों में न जाना पड़े और भयानक कष्टों को न भोगना पड़े। यह सब कैसे हो ?

हमें ऐसे मार्ग पर चलना होगा कि कर्म करते हुए भी हमें उनका फल न भोगना पड़े। श्री मद भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने ऐसे कर्मों को निष्काम कर्म की संज्ञा दी है। गुरु रूप में भगवान ने महात्मा अर्जुन देव को इसी निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया है और फिर बतलाया भी है कि ये निष्काम कर्म कैसे हो सकते हैं ?

अपने सभी कार्य स्वयं के लिये न करके मेरे (गुरु के) लिये करो - इसमें तुम्हें (महात्मा अर्जुन को) उसका फल भोगना नहीं पड़ेगा। अतः महात्मा अर्जुन ने "शिष्यस्तेहम्" कह कर भगवान कृष्ण को गुरु रूप में धारण किया।

भगवान कृष्ण तो महात्मा अर्जुन को उपलब्ध थे। हमें तो नहीं हैं। परन्तु उन्होंने शिष्य महात्मा अर्जुन-द्वारा अपने कर्मों को गुरु (स्वयं भगवान) के लिये करने का उपदेश दिया था। हमें भी ऐसे गुरु मिल जायें तो हम भी अपने शुभाशुभ कर्म उनके लिए करके कर्मफल के बंधन से मुक्त हो सकते हैं। अन्ततः निष्पाप होकर - जन्म, मरण, पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होकर सदा-सदा के लिये इन कष्टों से मुक्ति पा सकते हैं।

खोजने पर हमें भी सद्गुरु मिल सकते हैं जो हमें कर्म के बन्धन से छुड़ा दें, और सदा-सदा के लिये जन्म जन्मान्तर से पा रहे कष्टों से निवृत्ति दिला दें। सद्गुरु के बिना बन्धन से मुक्ति पाना संभव नहीं है। अतः सद्गुरु की खोज में लग जाइए और उन्हें पाकर ही चैन लीजिये। यों ऊपरी दिखावे की पूजा पाठ आदि से हम भगवान को धोका देना चाहते हैं। वे सर्वज्ञ है - आपके मन की बात भी जानते हैं - धोके में आने वाले नहीं हैं।

यह भी भली भांति समझ लीजिए कि 'गुरु-सद्गुरु' किसी विशेष व्यक्ति का नाम नहीं है। हम भगवान को ही गुरु के रूप में पाते हैं। भगवान ने उन्हें इसी कार्य के लिये पृथ्वी पर उतारा है।

हमारा सीधा संपर्क भगवान से नहीं है - सामान्यतः यह सीधा सम्पर्क संभव भी नहीं है। हमारी (मानव की) दुर्बलता ही इसमें बाधक है। भगवान की एक छोटी सी कृति 'सूर्य' को हम इन आँखों से देख नहीं सकते - यदि प्रयत्न करें तो अपनी दृष्टि खो बैठेंगे। भगवान कृष्ण ने महात्मा अर्जुन को दिव्यदृष्टि दी थी जिससे वे उनके काल रूप के दर्शन कर सके। हमें यह कुछ भी उपलब्ध नहीं है। हमें तो भगवान की सारी शक्तियों को गुरु में निहित मान कर ही उनकी सहायता से अपना मार्ग प्रशस्त करना पड़ेगा।

गुरु की पहचान कठिन अवश्य है। इस युग में सहस्रों की संख्या में बनावटी गुरु उपलब्ध है। इनमें से सच्चे गुरु की पहचान कैसे हो ? इसके लिए हमने पुस्तक के आध्यात्मिक भाग-3 में कुछ सुझाव आपके लिए प्रस्तुत किये हैं। उनके आधार पर यदि खोज करेंगे तो गुरु सद्गुरु पा लेना अधिक कठिन न होगा।

भाग 3 - आध्यात्मिक स्वास्थ्य

1. आध्यात्मिक स्वास्थ्य क्या है ?

जीवन का वह भाग जो हमारी आत्मा से सम्बन्धित है, आध्यात्म के अन्तर्गत आता है। हम इसके पहले शारीरिक तथा मानसिक जीवन की सविस्तार चर्चा करते आ रहे हैं। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें क्या-क्या कार्य करना चाहिए यह सब संक्षेप में पहले भाग में आपके सन्मुख रखने का प्रयत्न किया है।

दूसरे भाग में हमने मानसिक स्वास्थ्य का संक्षिप्त वर्णन किया है। स्वस्थ शरीर तथा मन द्वारा ही आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचा जा सकता है यह हमें ध्यान में रखना चाहिए। अतः आध्यात्मिक स्वास्थ्य के पहले के दोनों भागों में लिखित साधन अत्यन्त आवश्यक हैं। इसी के साथ हमारे जीवन का एक अत्यावश्यक आध्यात्मिक स्वास्थ्य अर्थात भगवान को पाने के प्रयत्न में हमें लग जाना है और इसमें क्या-क्या करना चाहिए संक्षेप में वर्णन करने का प्रयास करते हैं।

इस विषय का साहित्य बहुत कम उपलब्ध है। इसके विषय में साधारणतः हम कम ही जानते तथा सर्वसाधारण के अनुसार अधिक जानने की आवश्यक्ता भी नहीं समझते हैं। परन्तु यह इन दोनों शारीरिक तथा मानसिक से अधिक आवश्यक है। हमारा शारीरिक जीवन हमारे शरीर के साथ समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार मानसिक जीवन का भी एक बड़ा भाग शरीर के साथ समाप्त हो जाता है। परन्तु हमारी आत्मा का जीवन इन सबके साथ समाप्त नहीं होता। आत्मा अजर अमर है। मानव शरीर में वह शरीर तथा मन के साथ रहती और सुख और दुख भोगती है। मन और जीवात्मा दोनों ही तथा उसके साथ शरीर भी दुख सुख भोगता है। मन के कारण ही जीव अच्छे बुरे कर्मों के भोगों को भोगता रहता है। यही सामान्य क्रम है। आत्मा इस मन के साथ तरह-तरह की योनियों में अपने कर्मानुसार जाती और वह फल भोगती रहती है - परन्तु कुछ कर नहीं सकती क्योंकि सभी भोग योनियाँ हैं। केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि तथा भोग योनि दोनों का सम्मिश्रण है। फिर जब सहस्रों वर्षों के बाद मानव शरीर मिलता है तब भी बचे हुए कर्म भोगती और आगे के

लिए कर्म करती रहती है और उनको भोगने के लिए फिर योनियों में जाती है। यह एक ऐसा चक्र है जो समाप्त होने में ही नहीं आता। भली भांति समझ लीजिये कि कर्म योनि केवल मानव योनि ही है। बाकी सब भोग योनियाँ है।

सन्त हमारे सुख-दुखों से बचाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं और अपने आदर्शों पर चलने वालों को सुख-दुख के चक्कर से तथा जन्म-मरण व पुनर्जन्म के चक्कर से छुड़ाते हैं। यह सब कैसे होता है, यही यहाँ हमारा विषय है। मन जो हमें ऊंची आत्मोन्नति की स्थिति में जाने में सहायक तथा समर्थ होता है उसको इस प्रकार साधते हैं कि जहां तक उसकी पहुंच है, वहां तक आत्मा को ऊंचा पहुंचा दे। मन सूक्ष्म है, सूक्ष्म मण्डल स्थूल मण्डल से कई गुना बड़ा है। इसके आगे कारण मंडल सूक्ष्म से कई गुना बड़ा है। परन्तु मन सूक्ष्म के ऊपर कारण मंडल में नहीं जा सकता। अतः जब तक मन का साथ है सूक्ष्म मण्डल नहीं छूटता। मन के द्वारा जब ऐसी स्थिति में जीवात्मा पहुँचती है जहाँ से ऊपर ले जाने में मन असमर्थ होता है, तब केवल गुरुदेव ही आत्मा को उच्च लोकों में ले जाते हैं। वैसे भी गुरुदेव का साथ तो सदा ही रहता है वे ही हमारे मार्गदर्शक हैं। जब मन पीछे छूट जाता है वे ही आत्मा को आगे ले जाते हैं। ये वे स्थितियाँ हैं जिन्हें हम सामीपता के आगे सालोकता, सारूपता तथा अन्तिम सायुज्यता कहते हैं। संतों की भाषा स्पष्ट है। प्रयत्न करने पर गुरु कृपा से ही समझ में आती है। मन बुद्धि की पहुंच वहाँ तक नहीं है। आगे इसकी भी चर्चा करेंगे।

हम जिन्हें विद्वान तथा बुद्धिजीवी मानते हैं; उनका समाज में बड़ा आदर है। निस्संदेह मानव मन तथा बुद्धि ने बहुत-बहुत आश्चर्यजनक कार्य किए हैं। आधुनिक प्रगति का श्रेय इन्हीं सब को जाता है। हम अपने पाठकों से क्षमा चाहते हैं और उन्हें अपने उपरोक्त कथन की ओर आकर्षित करते हैं, जिसके अनुसार बुद्धि मन की एक अद्भुत शक्ति है - और मन के साथ सूक्ष्म की परिधि में आती है हमारी आत्मा केवल आत्मा सूक्ष्म नहीं वरन कारण रूप है। सूक्ष्म होने के कारण मन का तथा उस के साथ बुद्धि का भी प्रवेश उसमें नहीं है। इसी कारण मन को पीछे छोड़ कर केवल आत्मा आगे कारण के मंडल में प्रवेश पा सकती है। मन को साथ नहीं ले जा सकती। थोड़ा पुनः विचार कीजिए कि जिस-मन बुद्धि पर उसके बल पर

सांसारिक जीवन में हम इतना अधिक विश्वास करते हैं - और गर्व करते हैं वह ऊपर के कारण मंडल में जाने के लिये सर्वथा असमर्थ व अयोग्य है। अतः इस आगे के प्रकरण तथा क्रिया को, जो सद्गुरु द्वारा ही की जा सकती है; बुद्धि द्वारा समझना संभव नहीं है। बुद्धि की इस असमर्थता, दुर्बलता को बुद्धिजीवी स्वीकार नहीं करते। अतः हम उनके लिये इससे अधिक क्या प्रमाण दे सकते हैं ?

2. गुरु की आवश्यकता तथा पहचान

जो कार्य जिसके करने का होता है साधारणतः उस कार्य के लिए उसी व्यक्ति के पास हमें जाना पड़ता है। हम सदा से ऐसा ही करते आए हैं। अंग्रेजी पढ़ने मास्टर साहब के पास, फारसी पढ़ने मौलवी साहब के पास और हिन्दी संस्कृत पढ़ने पण्डित जी के पास जाते हैं। जो वस्तु अथवा विद्या जहाँ है, वहीं हमें लेने जाना पड़ेगा। यह सामान्य बात है जिसे सभी समझते हैं। हम हल्दी धनिया लेने पंसारी की दुकान पर जाते है बिसातखाने की दुकान पर नहीं। इसी प्रकार लकड़ी की कुर्सी लेने फर्नीचर की दुकान पर जाते हैं, दवाई की दुकान पर नहीं इत्यादि।

आध्यात्म की इस प्रकार कोई जानी मानी दुकान अथवा पुरुष विशेष नहीं मिलते। इसलिए कि यह सामान्य आवश्यकता की वस्तु नहीं हैं। मानव की रुचि इस ओर देखकर कुछ महानुभावों ने आध्यात्म को भी दुकानदारी की तरह बेचने का धंधा आरंभ किया हुआ है। हमें चाहिए कि इन व्यापारियों की परख कर लें केवल किसी विज्ञापन अथवा किसी के कहने के आधार पर ही इस काम में अपने आपको न लगा दें।

अब हम आपको सच्चे गुरु के विषय में बतलाना चाहते है जिससे आप उन्हें सरलता से पहचान सकें।

1. भगवान उन्हें भूले भटके मानवों के कल्याण के लिए ही इस संसार में भेजते हैं और भगवान ही उनके भरण पोषण का प्रबन्ध करते हैं। किसी की सहायता की उन्हें आवश्यकता नहीं होती। अतः पहले तो वे आपसे कुछ लेंगे ही नहीं। यदि किसी कारण से कुछ ले भी लिया तो उसे किसी ऐसे व्यक्ति को दे देंगे

जिसे आवश्यकता है व उन्हें यह बात पता है।

2. उनका जीवन बिल्कुल साधारण होगा। थोड़े में ही गुजारा हो जाएगा। जीवन खर्चीला नहीं होगा। न ही किसी प्रकार का दिखावा होगा।

3. आपको बाह्य आडम्बरों से (बाहरी पूजा पाठ से) बचाकर वे आपको आन्तरिक साधन-अभ्यास ही बताएँगे और समझा कर करा भी देंगे। केवल बतला कर आपको स्वयँ ही करने पर नहीं छोड़ देंगे। फिर समय-समय पर आपको आवश्यकतानुसार सहायता करके गलत दिशा में जाने से सदा ही रक्षा करते-बचाते रहेंगे। इस कार्य के लिए उन्हें शक्ति व सामर्थ्य भगवान के द्वारा दी जाती है। मानव मात्र का कल्याण करना ही उनका ध्येय होता है।

4. आध्यात्म की अंतिम सीढ़ियों तक वे आपका साथ नहीं छोड़ेंगे। सूक्ष्म के पश्चात् कारण के मण्डलों में तो केवल गुरु भगवान ही सहायक होते हैं।

यह मोटी पहचान सद्गुरु की है। यदि ये गुण आपको किसी गुरु में न मिलें तो उन्हें छोड़ दीजिए। उनसे कुछ भला होने वाला नहीं है। और ढूंढ़िये - आपकी लगन सच्ची होगी तो अवश्य मिल जाएँगे।

संतों के द्वारा आत्मा तथा मन को ऊँची स्थितियों में पहुंचाना एक ऐसा कार्य है जिसे हम तकनीकी (Technical) कह सकते हैं। हमारी भाषा में दिन प्रतिदिन काम के विषय में जानकारी देने के लिए तो पर्याप्त शब्दावली उपलब्ध हैं। मानसिक के लिए भी अब कुछ शब्द मिलने लगें है। परन्तु आध्यात्मिक स्थितियों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए शब्दावली का अभी अभाव है। कुछ शब्द सन्तों ने इसके लिए निश्चित भी किये हैं तो उन्हें भी हम सर्वसाधारण के लिए समझना कठिन है।

सामान्य शिक्षित वर्ग इसको नहीं मानते। वे अपनी बुद्धि को इतना विकसित मानते हैं कि उसके द्वारा वे सब कुछ समझ सकते हैं। हम इसको इसी प्रकार समझने का प्रयत्न करें कि एक इन्जिनियर जो अपने कार्य का पूरा जानकार

हैं परन्तु डाक्टर की विद्या की उसे जानकारी नहीं है। ऐसे इन्जिनियर को यदि डाक्टर किसी बीमारी अथवा उसके निदान के विषय में बतलाएगा तो सामान्यतः वह उसे समझने में समर्थ नहीं होगा। इसी प्रकार एक डाक्टर भी इन्जिनियर की बताई तकनीकी वार्ता को समझने में समर्थ नहीं होगा। इस प्रकार और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक खाती के काम में कुम्हार और कुम्हार के काम में खाती को समझने में कठिनाई होगी। इत्यादि-इत्यादि।

जिस विद्या के विषय में हम जानकारी चाहते हैं, उसमें हमें जानकारी जितनी अधिक होगी अथवा होती जाएगी हम उसे समझने में उतने ही सक्षम होते जायेंगे। यह एक साधारण सी बात है, आप भी इससे सहमत होंगे।

3. सन्त सद्गुरु

हम जिन्हें सन्त कहते हैं वे सांसारिक प्रलोभनों से बहुत ऊपर उठे हुए होते हैं। सांसारिक प्रलोभनों के शिकार संत कभी नहीं हो सकते। संतों को अपने पास आने वालों के कल्याण की तो चिन्ता अवश्य रहती है क्योंकि वे इसी कार्यक्रम को लेकर उनके पास जाते हैं परन्तु उनसे कोई लाभ उठाने की इच्छा या आवश्यक्ता नहीं होती। यहाँ हम आपको फिर याद दिला दें कि सन्तों की सारी आवश्यक्ताओं की पूर्ति भगवान द्वारा होती रहने का पक्का प्रबंध होता है। फिर वे आपको अथवा आने वालों को सही दिशा निर्देश क्यों नहीं करेंगे। उन्हें झूठ या बनावटी बात करके आपसे क्या लेना अथवा क्या प्रयोजन सिद्ध करना है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम सच्चे सन्त तथा बनावटी सन्त, मतलबी तथा वेश धारी में भेद समझ सकते हैं। यदि तुरन्त नहीं तो कुछ ही समय में यह स्पष्ट समझने में आ सकता है। इसी आधार पर असली संतों को परख कर उनसे लाभ उठाना चाहिए।

सन्तों का संसार में अवतरण होना भगवान के सृष्टिक्रम का एक सामान्य नियम तथा क्रिया है। वे सर्वसाधारण की सेवा के लिए ही भगवान द्वारा भेजे जाते हैं। उनकी आवश्यक्ताएँ भी सीमित होती हैं जिनको पूरी करने का प्रबंध भगवान द्वारा हो जाता है। उन्हें किसी की सहायता की आवश्यक्ता नहीं होती। अतः उनका कार्य निःस्वार्थ सेवा करना ही होता है। आप उनके पास जावें और उनकी सेवा का लाभ

लेवें यह आपके ऊपर निर्भर है।

फिर आगे चलकर यदि आपको यह विश्वास हो जाये कि इनके सम्पर्क से आपको आध्यात्मिकता का लाभ मिल सकता है, मिला है तथा आगे भी मिलते रहने की आशा ही नहीं, वरन् पूर्ण विश्वास भी है तो ऐसे सन्तों को गुरु रूप से धारण करने का मानस बनाना चाहिए और पूर्ण विश्वास होने पर उन्हें गुरु रूप में धारण कर लेना चाहिए। वे आपको सर्वशक्तिमान भगवान तक पहुँचाने के लिए कार्य अवश्य करेंगे। आपकी गहरी लगन, जितनी तीखी पैनी होगी उसी के अनुपात में आपकी प्रगति इस मार्ग में सामान्यतः होती रहेगी और आपका काम बन जाएगा।

आध्यात्म मार्ग के बहुत बड़े सद्गुरु, समय के सन्त का कथन है कि मानव को इसी जन्म में भगवान का साक्षात्कार तथा उनमें विलय प्राप्त कर लेनी चाहिए और यह संभव भी है। इस महान प्राप्ति के लिए पूर्ण रूप से समर्पण की आवश्यक्ता होगी। जब आपको यह विश्वास हो जाए कि इनकी शरण में हमारी सुरक्षा तथा प्रगति निश्चित है तो ऐसे सद्गुरु को आप आत्म समर्पण कर दीजिए। आपका काम बना बनाया है।

4. सन्त कबीर के अठारह चक्र

संत कबीर अपने समय के बहुत बड़े सन्त हो गये हैं। आध्यात्म मार्ग में इनका बड़ा आदर है। इनके द्वारा बतलाये अठारह चक्र, स्थूल सामान्य जीवन से सूक्ष्म तथा कारण की स्थितियों में उत्थान की विधि वर्णन की गई है। इनका यह साहित्य सबसे पुराना माना जाता है। यदि इनके पहले का कुछ साहित्य रहा भी हो तो अब उपलब्ध नहीं है।

संसार के सभी सन्तों के आत्मोत्थान का मार्ग यही रहा है - देश काल के अनुसार भाषा तथा शैली में भिन्नता रही हो परन्तु सभी सन्तों का मार्ग लगभग एक सा है।

संत कबीर के बतलाए अठारह चक्र ये हैं -

1. मूलाधार अर्थात् गुदा चक्र	7. सहस्र दल कमल	13. अलख	
2. स्वाधिष्ठान, इंद्रिय चक्र	8. त्रिकुटी	14. अगम	
3. मणिपुर अर्थात् नाभि चक्र	9. शून्य	15. अकह-अनामी	
4. अनाहत अर्थात् हृदय चक्र	10. महाशून्य	16.	इन तीन का भेद संतों ने गुप्त ही
5. विशुद्ध अर्थात् कण्ठ चक्र	11. भंवर गुफा	17.	रखा है। जो वहाँ पहुंचेगा, स्वयं
6. आज्ञा चक्र	12. सचखण्ड	18.	ही जान लेगा।

इनमें पहले छः स्थूल के हैं। दूसरे छः सूक्ष्म के हैं और अन्तिम छः कारण के हैं। गुरु भगवान की सहायता से इनमें से एक-एक को जय किया जाता है। इन सब का सविस्तार वर्णन कई सन्तों ने व्याख्या सहित किया है जिनमें 'घट मार्ग' (सिकंदराबाद) और 'साक्षात्कार का रहस्य', जयपुर मुख्य है। पाठकगण वहाँ से पढ़ लें। यहाँ संक्षेप में इतना ही दिया जा सका है।

5. आत्मा की अंतिम पहुँच

हम पहले कह आये हैं कि आत्मा की अंतिम पहुँच भगवान नारायण तक गुरु भगवान द्वारा ही संभव है। असाधारण परिस्थितियाँ अन्यथा भी हो सकती हैं अर्थात् कोई सीधे भगवान तक बिना गुरु के पहुँच सकते हैं। नारायण की सृष्टि में नारायण की इच्छा सर्वोपरि है - वे सब प्रकार से समर्थ हैं। परन्तु यह सामान्य नियम नहीं है।

जैसा हम पहले वर्णन कर आये हैं। हमें इस मार्ग अर्थात आध्यात्मिक मार्ग अर्थात भगवान को पाने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता होती है जो कि अनिवार्य है। वे सारी राह अर्थात सूक्ष्म का बहुत-बहुत लम्बा मार्ग तथा उसमें ऊंच नीच, कठिनाइयों, अवरोधों आदि से परिचित होते हैं और हमें उन सब से बचाते हुए सीधे मार्ग पर ले जाने में सक्षम होते हैं। इनकी सहायता से व देखरेख में ही, सूक्ष्म पार होता है। फिर जब सूक्ष्म का अंत आता है तब हमारा मन जो कि सारे ही सूक्ष्म मार्ग में हमारा सहायक रहा होता है और सूक्ष्म से आगे कारण की स्थितियों में जाने में समर्थ नहीं है - उसे छोड़ना पड़ता है और गुरु भगवान की सहायता से ही आगे का

मार्ग प्रशस्त होता है।

सन्तों की भाषा में इन कारण की स्थितियों का कई प्रकार से वर्णन है। संत कबीर का वर्णन आपने ऊपर पढ़ा ही है। हमारे गुरु भगवान संत सद्गुरु महात्मा रामचंद्र जी उर्फ श्रीमान लाला जी महाराज द्वारा इन स्थितियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

(1) सालोकता - जब गुरु भगवान की सहायता से आत्मा सूक्ष्म को छोड़कर आगे की स्थिति में पहुँचती है तब वह सर्वशक्तिमान भगवान नारायण के देश में अर्थात लोक में प्रवेश करती है। इसे सालोकता कहते हैं। यह कोई स्थान नहीं परन्तु आत्मा की स्थिति है। यहाँ शान्ति तथा प्रकाश स्वरूप भगवान का अस्तित्व प्रत्यक्ष रूप से समझ में आता है। आनन्द जो कि विशेष प्रकार का सुख है जिसमें शान्ति स्थायी रूप से सर्वदा विराजती है उसका आभास मिलता है और आगे बढ़ने का साहस व इच्छा प्रबल होती है।

(2) सामीपता - निकट से निकटतम स्थितियों को गुरु भगवान की सहायता से ही पहुँचा जाता है। आत्मा आगे की स्थिति के लिए यहाँ आकर आगे जाने के लिए विकल हो जाती है। ऐसी स्थिति में गुरु भगवान और ऊंची स्थिति पर पहुँचने में सहायता करते हैं।

(3) सारूपता - यह सामीपता से आगे की स्थिति है। यहाँ आकर आत्मा का रूप परमात्मा के समान और तद्रूप हो जाता है। परन्तु यह भी अंतिम स्थिति नहीं है। इसके आगे की तथा अंतिम स्थिति सायुज्यता है।

(4) सायुज्यता - तब सायुज्यता का समय आता है। गुरु भगवान की कृपा से आत्मा को इस सायुज्यता अर्थात भगवान नारायण में मिलकर एक हो जाने की स्थिति प्राप्त होती है। इसे सायुज्यता का नाम संतों ने दिया है। यह अंतिम स्थिति है। गुरु भगवान हमें जब यहाँ तक पहुंचा देते हैं तब उनका कार्य समाप्त हो जाता है और वे आपके और नारायण के बीच में से हट जाते हैं।

थोड़ा विचार कीजिए कि गुरु भगवान अर्थात सद्गुरु का उत्तरदायित्व क्या है ? और उनका कार्य कहाँ जाकर समाप्त होता है । यह ऐसा कार्य है कि जिससे उंचा या श्रेष्ठ कोई भी कार्य संसार में अथवा अन्यत्र हो ही नहीं सकता । बनावटी गुरु केवल पढ़-पढ़ कर सन्तों की पुस्तकों के अध्ययन के द्वारा जानी गई बातों का वर्णन करके हम सबको अपनी ऊँची जानकारी का परिचय देकर अपनी ओर आकर्षित करते हैं, और हमारे धन, सेवा आदि का शोषण करते हैं । इनसे हमें सावधान रहना चाहिए ।

गुरु भगवान सबका कल्याण करें ।

Health Management

CURE YOUR ILLS WITH WATER

The following are extracts from Japan's Sickness Association pamphlet on water therapy and water is recommended as internal medicine for:

- Headaches, Hypertension, Anemia, Rheumatism, Bell's Palsy, General Paralysis, Obesity, Arthritis, Tinnitus, Tachycardia, Asthenia.
- Couch, Asthma, Bronchitis, Pulmonary Tuberculosis.
- Meningitis, Hepatic diseases, Uropathy.
- Hyperacidity, Gastric Hypostasis, Dysentery, Rectal Prophase.

Therapy by drinking water seems to be unbelievable and inconceivable but facts have proved it to be reliable and recommendable. Drinking sufficient quantity of water at a time renders the cure more effective by forming more fresh blood taken by our bodies which turn them as haemopolesis. This is made possible by the fictions of the mucosa folds found in the nutrients from food taken by our bodies which turn them into new fresh blood. This therapy was published in an article written by a Japanese Professor in a medical university seven years ago.

Due to insufficient exercise of the colon a man feels exhausted and becomes sick and finds it hard to cure. Grown up people have colon or large intestine eight feet long capable of absorbing the nutrient taken by us.

This will be completely absorbed by the mucosa folds which turn them into new fresh blood. This blood is responsible for curing our ailments and is considered as prime power in the improvement of our health. In other words Water Therapy will make one healthy and prolong life.

The following is the story of the author. "I met an old man. 30 years ago. This old man was very robust and extraordinarily healthy. I greeted him and asked him if he had any sickness. He replied. 'I have for a long lime no illness at all. Way back when I was twenty years old. I

suffered gastritis and was confined to bed for almost ten years. During this period I had been treated by five physicians with all kinds of medicine without any results. Later an old medical friend of mine told me that physicians or medicine could not do me any good. No medical therapy could cure me, but there is one therapy that I may try.'

I asked him what that therapy was. He said 'Every morning when you get up, do not wash your face, nor your mouth. Drink 1.26 kilo (8 tumblers) of water without stoppage. Don't eat anything before you finish. He left without giving me any medicine. I followed his instructions and drank 1.26 kilo of water. Within an hour I urinated three times.'

'I ate my porridge for breakfast and it had never tasted so delicious and tasty for the past ten years. Next morning I drank again this quantity of water. I moved my bowels and all the stagnant waste came out. Three months later my body weight increased by ten kilos. I am now 66 years old. Ever since I took the water therapy, I have never been sick again, not even a cold. After drinking water I felt that the tap water contains calcium and magnesium salts and other impurities, so I boiled the water during the night time and left the sediments to settle down until next morning. I drank the upper clear portion of the water. No ill effects such as headaches, stomach trouble or loose bowels occurred. I felt comfortable. Water therapy saved the members of my family, when my kids suffered meningitis, after applying the water therapy all become well. My wife ten years ago had heart disease and obesity (too fat). After taking therapy, within ten days all sickness disappeared. In two months she lost eight kilos in weight.'

A few suggestions:

A sick person sometime finds it hard to drink 1.26 kilos of water all at a time but he has to be patient and try to run or hike for a while and he will surely consume the whole quantity of water. After drinking take good exercise for 20 minutes either jogging or running. (The translator, for convenience, recommends stationary jogging in your bedroom). Sick persons, who cannot get up after therapy, practice deep breathing, for the purpose of making the water inside the colon flow so as to wash and clean the mucous folds. "Some people may have loose bowels and have to urinate three times within an hour. However, after three or four days all these troubles will be eliminated. One week after, I urinated only once after drinking water. Even those people suffering from gastrulas by

experience will be cured after water therapy." For hypertension one week, Diabetes one week, Gastric Pastrami three days, Constipation one day, Cancer one month and Pulmonary Tuberculosis eight months. Old people who have arthritis and rheumatism should undergo water therapy three times a day for one week in order to have full recovery.

During meal times you can have usual drink of water, but two hours alter meals do not drink any more.

Before you go to bed, don't eat anything especially apples.

लगभग एक वर्ष पहले हमें यह जल चिकित्सा का पर्चा मिला था। किसी जापानी महोदय का यह स्वयं का अनुभव है। भारतीय यौगिक अभ्यासों में भी जल नेती द्वारा प्रक्षालन तथा धोती द्वारा पेट आदि का प्रक्षालन किया जाता था। शारीरिक स्वास्थ्य पर इनका क्या इन्हीं के समान अन्य भी क्रियाओं का प्रभाव अवश्य ही लाभकारी होता है परन्तु इन क्रियाओं को अनुभवी गुरु के द्वारा सीख कर ही करना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि होने की संभावना अधिक रहती है।

-लेखक